हरिदास संस्कृत सीरीज ३३६

# शिल्पदीपकः

सम्पादकोऽनुवादकश्च

डॉ. श्री कृष्ण 'जुगनू'

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

Scanned with CamScanner

नारायणदास
R17921

हरिदास संस्कृत सीरीज
३३६
+++

श्रीगङ्गाधरसङ्गृहीतः

# शिल्पदीपकः

(गृहहर्म्यादिनिर्म्माणविषयकवास्तुशास्त्रान्तर्गतम्)

सटिप्पणालोचनापाठ-हिन्दीव्याख्याविभूषितः

*( An ancient Treatise on Architecture )*

सम्पादकोऽनुवादकश्च-
डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी

# प्राक्कथन

'आब्रह्मभुवनाल्लोका गृहस्थाश्रममाश्रिताः' कहकर विश्वकर्मा ने स्पष्ट किया है कि गृहस्थाश्रम के आश्रित कौन नहीं है? गृहस्थाश्रम के लिए आवास को अति महत्वपूर्ण माना गया है। वास्तु, निवास, आवास, निकेतन, आश्रय, आयतन, गृह, भवन, हर्म्य इत्यादि से आशय रहने योग्य स्थान से ही है। यह आवास की दृष्टि से सर्वाङ्गपूर्ण, सर्वतोत्तम और संतुष्टिप्रद हो- यह ऋषियों को भी अभीष्ट रहा है। इसी नाते इस दिशा में बहुप्रकारेण विचार हुआ। यही विचार वास्तुशास्त्र के प्रणयन का आधार बना। मय और विश्वकर्मा को इस विद्या के प्रणेता होने का श्रेय है, यद्यपि पुराणों में कभी ब्रह्मा, कभी शिव तो कभी विष्णु से इस विद्या का कथन करवाया गया है- यह इस विषय की महत्ता को प्रतिपादित करता है।

विश्वकर्माप्रकाश में कहा गया है कि पूर्वकाल में शिव ने इस विद्या का प्रवर्तन किया, ब्रह्मवैवर्तपुराण में इसे हरि के मुख से कहलाया गया है जबकि वशिष्ठसंहिता, राजमार्तण्डादि में ब्रह्मा को इस विद्या का आद्य प्रवर्तक कहा गया है। इसकी सुदीर्घ परंपरा पर यदि दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि महर्षि पराशर ने बृहद्रथ से कहा, बृहद्रथ ने विश्वकर्मा से कहा और विश्वकर्मा ने अपने पुत्रों सिद्धार्थ, जय, अपराजितादि से कहा। इस प्रकार धीरे-धीरे यह ज्ञान लोक व्यवहार्य होता हुआ जगत् के कल्याण का हेतु सिद्ध हुआ- कथयामि मुनिश्रेष्ठ शृणुष्वैकाग्रमानसः। यदुक्तं शम्भुना पूर्वं वास्तुशास्त्रं पुरातनम्॥ पराशरः प्राह बृहद्रथाय बृहद्रथः प्राह च विश्वकर्मणे। स विश्वकर्मा जगतः हिताय प्रोवाच शास्त्रं बहुभेदयुक्तम्। वास्तुशास्त्रं प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया॥

वास्तुमतों पर विगत कुछ वर्षों से अनेक ग्रंथ प्रकाश में आए हैं। ज्योतिर्विदों ने अपने-अपने ढंग से लोकावश्यकता के अनुसार ग्रंथों को लिखा। विदेशी शास्त्रों को भी भारतीय संदर्भ में प्रतिपादित करने के बहुतेरे यत्न हुए किंतु हमारे आकर-ग्रंथों पर बहुत ही कम कार्य हुआ। इसे मूल शास्त्रों पर दृष्टिनिक्षेप का प्रमाद कहें अथवा जानकारियों का अभाव कि इन प्रयासों ने हमारी विद्या-विरासत से ही हमें दूर करने में कोई कसर नहीं छोड़ी और दैवज्ञ भी मूलधारा से कटे हुए जान पड़ते हैं।

Scanned with CamScanner

# प्राक्कथन

आज भी अधिसंख्य वास्तुग्रंथ प्रकाशन जगत से कोसों दूर है। 'शॉर्टकट' की संस्कृति ने हमें विद्याभ्यास से वंचित कर दिया है और वास्तु के नाम पर हमें केवल यह जानकारी दी है कि घर में कौनसा स्थान, कक्ष कहाँ पर होना चाहिए। भवन निर्माण के अन्य मूल प्रयोजन से हमें जैसे कोई अभीष्ट ही नहीं रह गया। स्थापत्य के सिद्धांत पक्ष को गौण करने का आज जैसा प्रयास पहले कभी नहीं हुआ।

विगत कुछ वर्षों से वास्तु और ज्योतिष विषयक अप्रकाशित ग्रंथों पर कार्य करते-करते कई ग्रंथों का संकलन करना पड़ा। सूत्रधार मण्डन, श्रीपतिभट, चक्रपाणि मिश्र, सुरपाल आदि के ग्रंथों के उद्धार-कार्य की दिशा में ही शोधानुसंधान करते हुए एक दिन गङ्गाधर संगृहीत 'शिल्पदीपक' ग्रंथ की गुजराती अनुवाद सहित प्राप्ति हुई। इसके श्लोकों और अर्थ पर जब मेरा ध्यान गया तो पाया कि इसका पाठ बहुत ही अशुद्ध है। श्लोकों का मूल स्वरूप तो बिल्कुल अनुचित जान पड़ा। इसके श्लोकों के शुद्धीकरण की दिशा में सोचा तो विचार आया कि इस संग्रह ग्रंथ के वास्तविक पाठ को तैयार किया जाना चाहिए। यही सोचकर मैंने सर्व प्रथम इसके सभी श्लोकों को शुद्ध किया और बाद में अर्थ।

विचार यह था कि येन-केन-प्रकारेण यह ग्रंथ शुद्ध हो और विद्वज्जनों के हाथों तक पहुँचे। साथ ही भारतीय विद्या अनुसंधित्सुओं के लिए उपयोगी सिद्ध हो- इसी उद्देश्य से इसका पाठ तैयार किया गया है। यह स्मरणीय है कि इसके प्रकाशित पाठ के आधार पर केवल श्लोकों को लिया गया है किंतु श्लोकों के मूल स्वरूप को देने का उपक्रम किया गया है। कहीं-कहीं विषयक्रम से सम्बद्धता के लिए श्लोकों का क्रम भी परिवर्तित करना पड़ा है तो कहीं-कहीं विषय को पूर्ण करने के लिए अतिरिक्त श्लोक भी देने पड़े हैं। कुल मिलाकर वास्तु विषयक मूल, समग्र सामग्री को गङ्गाधर की परिकल्पनानुसार संजोया गया है। यह गङ्गाधर का मौलिक ग्रंथ न होकर संकलन मात्र है किंतु वास्तु विषयक महत्वपूर्ण सिद्धांतों और सामग्री का इसमें अनुकूल समावेश है और शिल्पी समुदाय सहित भारतीय विद्या शोधकों के लिए उपादेय है।

इस पाठ में मूल ग्रंथ के अतिरिक्त चक्र, सारिणियों का नवीकरण किया गया है। पाठ व अनुवाद एकदम नया है। चित्र, आरेखन भी नवीकृत है। विद्वज्जन समुदाय में यह आदर पाएगा, ऐसी मेरी अपेक्षा भी है और विश्वास भी। एक महत्वपूर्ण किंतु बेतरतीब पाठ को तरतीबवार करने की दिशा में एक लघु प्रयासमात्र है। साथ ही एक सीमा तक सिमट कर रह गए ग्रंथ को बहुजन समुदाय तक विस्तृत करने की दिशा में

Scanned with CamScanner

एक कदम भी है- आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।

पाठ संपादन, अनुवाद व सामग्री संयोजन के कार्य में सहधर्मिणी पुष्पा चौहान, पुत्री अनुभूति, अनुकृति और अनुज नटवर चौहान और अरविंद चौहान ने पर्याप्त श्रम किया है। पुस्तकाकार देने की दिशा में भतीजे राजेश चौहान व अनुजवधू गुणवन्ती चौहान श्रम किया, उन्हें धन्यवाद।

मूल पाठ सहित अन्य जिन ग्रंथों से सहायता ली गई है, उनके प्रकाशकों, संपादकों के प्रति अनेकशः आभार। यह शोधित ग्रंथ लोगों की निगाह से वञ्चित ही रहता यदि चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी के संचालक श्रीब्रजमोहनदास गुप्ता इसके प्रकाशन का दायित्व ग्रहण नहीं करते, उनके प्रति आभार।

कई प्रयासों के बावजूद इसमें त्रुटियाँ हो सकती है क्योंकि 'सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृत्ताः', विद्वान पाठक सार ग्रहण करेंगे और त्रुटियों की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करेंगे। जो अच्छाइयाँ हैं वे आनंदकंद नंदनंदन प्रभु श्रीनाथजी की कृपा का सुफल है और त्रुटियाँ मुझ अल्पज्ञ से हुई है- गच्छतः स्खलनं क्वापि भवेत्येव प्रमादतः। हसंति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

विदुषां वशंवदः

**श्रीकृष्ण 'जुगनू'**

*उदयपुर (राजस्थान)*

२१ अक्टूबर, २००४ ई.

शारदीय नवरात्राष्टमी, विक्रमाब्द २०६१

Scanned with CamScanner

**वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः।**
**यत् त्वेमेहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥**

हे वास्तोष्पते गृहपालक देव! आप हमें जगाएँ। हमारे गृह में पुत्र-पौत्र आदि द्विपदों, गौ, अश्व आदि चतुष्पदों को नीरोग एवं सुखी करें। जो धन हम आपसे माँगें, वह हमें प्रदान कीजिए।

**वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरन्दो।**
**अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व॥**

हे वास्तोष्पते! आप हमारे लिए कल्याणकारी धन का विस्तार-प्रसार करें। हे सोम! हम आपकी कृपा से गौओं तथा अश्वों के साथ नीरोग रहें। आप हमारा पुत्रवत् पालन करें।

**वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या।**
**पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥**

हे वास्तोष्पते! हम आपसे सुखकर, रमणीय और ऐश्वर्य युक्त स्थान प्राप्त करें। हमें प्राप्त और प्राप्त होने वाले श्रेष्ठ धन-वैभव की आप रक्षा करें। हमें सदा कल्याणकारी साधनों-उपस्करों से सदा सुरक्षित रखें।

(ऋग्वेद ७, ५४, १-३)

Scanned with CamScanner

# वास्तु परम्परा और शिल्पदीपक

वास्तुशास्त्र की महत्ता जीवनोपयोगी विषय के रूप में है। व्यक्ति जिस स्थान पर निवास करता है, वह सर्व प्रकारेण उपयोगी और निरापद सिद्ध हो, इसीलिए हमारे महापुरुषों ने वास्तुविद्या का विकास किया। ऋषि-मुनियों का कथन है कि स्त्री-पुत्र आदि के भोग, सुख, धर्म, अर्थ, काम को देने वाला, प्राणियों के सुख का स्थान और सर्दी, वायु, गर्मी आदि त्रासदियों से रक्षा-सुरक्षा करने वाला आवास ही है। विधिपूर्वक गृह निर्माणकर्ता को बावड़ी, देवालय आदि के निर्माण का पुण्य भी प्राप्त होता है, इसीलिए विश्वकर्मा आदि ने सर्वप्रथम गृहनिर्माण का आदेश प्रदान किया है जैसा कि सूत्रधार मण्डन (राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् १, ५) का कथन है-

*स्त्रीपुत्रादिकभोगसौख्यजननं धर्म्मार्थकामप्रदम्*

*जन्तुनामयनं सुखास्पदंमिदं शीताम्बुधर्मापहम्।*

*वापीदेवगृहादिपुण्यखिलं गेहात्समुत्पद्यते गेहं*

*पूर्वमुशन्ति तेन विबुधाः श्रीविश्वकर्म्मादयः॥*

कहा तो यह भी गया है कि पर्णशाला के निर्माण से कोटिगुण, मृण के गृह निर्माण से दस करोड़गुण, इष्टिका के गृह से शतगुण और पाषाणों का गृह बनाने से अनन्तगुण पुण्य की प्राप्ति होती है- *कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृण्मये दशसङ्गुणम्। ऐष्टिके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्तं फलं गृहे॥*

पुराणकारों ने स्वगृह निर्माण की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए कहा कि गृहस्थ द्वारा की गई समस्त क्रियाओं-कृत्यों की फलश्रुति स्वगृह में ही संभव है न कि परगृह में। परगृह में समस्त कृत्य निष्फल हो जाते हैं- *गृहस्थस्य क्रियाः सर्वा न सिध्यन्ति गृहं विना। यतस्तस्माद् गृहारंभप्रवेशसमयौ ब्रुवे॥ परगेहे कृताः सर्वाः श्रोतस्मार्तक्रियाः शुभाः। निष्फला स्युर्यतस्तासां भूमीशः फलमश्नुते॥*

इस प्रकार वास्तु का जो महत्व पुराकाल में वर्णित किया गया, वह आज भी सर्वविदित है। आज के परिप्रेक्ष्य में भी गृहनिर्माण को कुछ व्यक्ति तो जीवन के एक लक्ष्य के रूप में भी देखते हैं। यद्यपि इसको आज की भोगवादी संस्कृति के रूप में

Scanned with CamScanner

देखा जाता है किंतु यह सही है कि आजीविका के साथ अपना आवास भी आवश्य होना चाहिए। जब पशु-पक्षी तक अपने लिए आवास को अपरिहार्य मानते हैं तो गृहस्थ क्यों नहीं।

**विशद विषय-**

वास्तु विषय इस अर्थ में अति महत्वपूर्ण है कि इसमें गृह निर्माण विषयक प्रभू जानकारी मिलती है। किंतु, इतना ही नहीं है। सूत्रधारों, स्थपतियों ने इसे महासागर की भांति देखा है और अपने ज्ञान को उसकी किञ्चित बूंदों के समान ही स्वीकार किया है इस ज्ञान की विशदता ही इसे ब्रह्मा के मुख से कथित सिद्ध करती रही है। जैसा कि मुनि वशिष्ठ (वशिष्ठसंहिता, वास्त्वाध्याय ३९, १) ने कहा है-

*वास्तुज्ञानं प्रवक्ष्यामि तदुक्तं ब्रह्मणा पुरा।*

*ग्रामसद्मपुरादीनां निर्माणं वक्ष्यतेऽधुना॥*

यही मत धाराधिप भोजराज का है जिन्होंने 'राजमार्तण्ड' में स्वीकार किया है कि ब्रह्मा ने जिस ज्ञान का प्रवर्तन किया, समय-समय पर उसका यथावश्यकता कथन होता रहा है- *वास्तुज्ञानमथातः कमलभवान्मुनि परंपरायातम्। क्रियतेधुनायेदं विदग्ध सांवत्सरप्रीत्यै॥ सर्वदोषैर्विनिर्मुक्तं गुणैः सर्वैलङ्कृतम्। प्रणम्य सर्वलोकेशं वास्तु-लक्षणमुच्यते॥ (७७८-७९)*

इस ज्ञानाश्रित शाखा के प्रवर्तकों, विकासकर्ताओं व सूत्रधारों का निष्कर्ष है कि व्यक्ति को अपने के लिए सुदृढ़ आवास का निर्माण करना चाहिए। यह आवास चिरस्थायी और सुखद होता है। उसमें प्रकाश, पवन, पानी, पर्यावरण के साथ ही प्रीति का विकास-प्रवाह निरंतर रहे, इसी मान्यता को लेकर प्रत्येक काल में आवासों की सुदृढ़ता, सुंदरता और स्थायित्व के लिए विविध प्रयास किए जाते रहे तथा इन प्रयासों ने वास्तु विज्ञान को विकास की वीथी की ओर अग्रसर किया। विविध ग्रंथों के प्रणयन के लिए यही विचार आधार बना।

**विविध विद्या प्रवर्तक-**

महाकाव्यकाल में शिल्प व कलाओं के साथ इस विद्या को महत्व मिल चुका था। जैसा कि रामायण में कहा गया है- *नाना शिल्पकलाज्ञश्च भवेरपिपरन्तप।* यही नहीं, महाकाव्य और स्मृति-नीति काल में इस विद्या का पर्याप्त विकास हो चुका था और विश्वकर्मा ही नहीं, प्रजापति, नारद, वैश्रवण, पिप्पलाद, मनु, मत्स्य, काश्यप,



भारद्वाज, मय आदि स्थापत्यशास्त्रियों या वास्तुविद्या विशारदों के मतों का प्रचार हो चुका था। वराहमिहिर (५०५-५८० ई.) ने पूर्ववर्ती आचार्यों में गर्ग, मय, विश्वकर्मन, वसिष्ठ, नग्नजित्, भास्कर और मनु- इन नामों का स्मरण किया है। 'मत्स्यपुराण' के वास्तुविद्या विषयक अध्याय (२५१, २-३) में ऋषियों ने वास्तुविद्या के अठारह उपदेशकों का नामोल्लेख किया गया है-

*भृगुरत्रिर्वसिष्ठ विश्वकर्मा मयस्तथा।*

*नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः॥*

*ब्रह्माकुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च।*

*वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती॥*

लगभग दसवीं शताब्दी में सङ्ग्रहीत अग्निपुराण में २५ आचार्यों की सूची हो गई और १२-१३ वीं सदी में लिखित मानसार में इन आचार्यों की सूची ३२ तक जा पहुँची। इसी प्रकार की सूची मयमत में भी मिलती है जिनको अपराजितपृच्छा, सनत्कुमार वास्तुशास्त्र आदि ग्रंथकारों ने भी स्वीकार किया है। विद्वानों ने इन सूचियों को भ्रष्ट और काल्पनिक कहा है। इन सूचियों में पुनरुक्ति दोष भी कहा है। यहाँ यह स्मरणीय है कि चूंकि भिन्न-भिन्न कालों में इन ग्रंथों का लेखन-संग्रह हुआ है इसलिए उस काल तक जो-जो भी आचार्य प्रसिद्ध हो गए उनका नाम इन ग्रंथ सूचियों में संलग्न होता चला गया।

**नियम, सिद्धांतों का विकास-**

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पूर्व मध्यकाल तक तो राजप्रासाद के निर्माण के विभिन्न नियम तय हो गए तथा दरबारियों के साथ ही सेवकों-भृत्यों, जन सामान्य के लिए यथेष्ट भवनादि के निर्माण तथा स्थानादि के चयन के निर्देश दिए जाने लगे। मयमत, ईशानशिवगुरुदेव पद्धति, मानसार, विश्वकर्माप्रकाश, जयपृच्छा, समराङ्गणसूत्रधार, रत्नकोश, ज्योतिषरत्नमाला, ज्ञानप्रकाशदीपार्णव, क्षीरार्णव, वृक्षार्णव, अपराजितपृच्छा आदि में इस प्रकार के विविध विचारों को प्रतिपादित किया गया है। सूत्रधार मण्डन, वास्तुदेव दैवज्ञ, जिनदत्तसूरि, ठक्कुर फेरू के निरंतर प्रयासों का यह परिणाम रहा कि इस विद्या पर निरंतर विमर्श हुआ और इस विद्या पर शास्त्रीय ग्रंथों का प्रणयन होता रहा। कतिपय प्राचीन वास्तुविमर्शकर्ताओं में माण्डव्य, ध्रुवादि नाम भी मिलते हैं जबकि विश्वेश्वर के नाम से 'वास्तुसार' ग्रंथ मिलता है और योगेश्वराचार्य के किसी ग्रंथ का

Scanned with CamScanner

दसवीं सदी में अवश्य प्रचलन था जिसका उद्धरण श्रीपति भट ने 'ज्योतिषरत्नमाला' में दिया है।

ज्योतिष में वास्तु को संहितोक्त विषय के रूप में मान्यता दिलाने का सर्वप्रथम प्रयास कदाचित् वराहमिहिर ने किया था। कालांतर में लल्लाचार्य, श्रीपति, शिवराज, केशव, नारायण दैवज्ञ, चक्रपाणि मिश्र, रामदैवज्ञ, गोविंद, रघुनाथ, महादेव वाडव, गणेश रावल इत्यादि अनेकानेक ज्योतिर्विदों ने मुहूर्तादि ग्रंथों में वास्तु प्रकरण को स्थान दिया और इसमें विभिन्न विचारों को भी प्रतिपादित किया। ज्योर्तिगर्णितवशात् वास्तु विषय में भी विविध दृष्टि से गणिताकलन किया जाने लगा। यद्यपि इसकी शुरूआत हस्तं, कम्बादि के विकास के साथ ही हो गई थी।

**प्रमुख विषय-**

यज्ञार्थ भूमिमपित व्यवहार विषयक शुल्बसूत्रम् से आरंभ मानी गई वास्तुविद्या में केवल गृहनिर्माण पर विचार नहीं किया गया अपितु निम्न विषयों का भी समावेशन मिलता है-

१. ग्राम, पुर आदि स्थानों पर निवास और शुभाशुभत्व

२. राशि के अनुसार ग्राम निवास व निषिद्ध स्थान

३. इष्ट नक्षत्रानुसार निवास का फलाफल

४. गृहों का प्रमाण, वर्ण-जाति, कर्मानुसार

५. गृह योग्य द्वार व दिशा

६. योग्यायोग्य भूमि का निर्धारण व शुभाशुभ वृक्ष

७. गृहारंभ के लिए विशेष शुभाशुभ काल- मुहूर्त, तिथि, वार, नक्षत्र, ग्रहस्थिति

८. शालार्थ ध्रुवाङ्क, प्रस्तार विचार

९. सोलह प्रकार के गृहों का संयोजन और उनमें निवास का फलाफल

१०. आयव्ययादि विविध अङ्गों पर विचार

११. आरंभकाल में विचारणीय वृषचक्र

१२. सौरचांद्रमासानुसार पूर्वादि दिशाओं पर विचार



१३. कूप, आरामादि उपस्करों का निर्माण व दिशाचयन

१४. वास्तुपुरुष का न्यास व खातकरण

१५. गृहायु, लक्ष्मी-दारिद्र्यप्रद गृह का ज्ञान

१६. द्वार, उदुम्बर, देहरी आदि का निर्माण तथा

१७. गृहप्रवेश, सूत्रधार-कर्मचारियों का अभिनंदन, होम, बलिकर्म इत्यादि।

अधिकांश शिल्प और वास्तु ग्रंथों में इन्हीं विषयों पर न्यूनाधिक विस्तार मिलता है। किसी-किसी ग्रंथ में केवल गणित विचार मिलता है तो किसी-किसी में संतुलित रूप से सभी अङ्गों पर विचार किया गया है। इस विद्या के सम्यक् विचार की दृष्टि से मत्स्यपुराण का विभाजन उचित है। इस समय तक आयादि अङ्गों विस्तार अल्प ही था जबकि इसका सर्वाधिक विस्तार ११-१२वीं सदी में हुआ जबकि क्षीरार्णव, दीपार्णव का सम्पादन हुआ था। इन अङ्गों ने वास्तुविद्या को नियमित करने और इस विषय को एक अनुशासन के रूप में प्रतिष्ठित करने में योगदान दिया और इसी कारण इसके ज्ञाता सूत्रधार के प्रति सम्मान और अभिनंदन का भाव जागा। सूत्रधारों ने वास्तुविद्या विषयक सूत्रों को कण्ठस्थ किया या एतद्विषयक ग्रंथों को सहेजकर रखा। कई सूत्रधारों ने आवश्यक विषयों का संग्रह भी किया।

**शिल्पदीपक : संग्रहग्रंथ-**

ऐसे ही सूत्रधारों में गङ्गाधर का नाम स्मरणीय है जिसने वास्तुविद्या विषयक नाना उपयोगी विषयों को संगृहीत कर अपने ग्रंथ को 'शिल्पदीपक' नामाभिधान दिया। सूत्रधार गङ्गाधर के विषय में जानकारी का अभाव है। शिल्पदीपक का जो संस्करण गुजरात से वर्षों पूर्व निकला, उसमें महादेव रामचंद्र जागुष्टे ने लिखा है कि गङ्गाधर दक्षिण के थे किंतु उन्हें चूंकि इसकी हस्तलिपि ही मिली थी और उसमें संग्रहकर्ता के विषय में कोई जानकारी नहीं थी अतः यही माना जाता रहा कि गङ्गाधर दक्षिण के किसी प्रदेश का निवासी था।

इस ग्रंथ उल्लेख प्रसिद्ध वास्तुशास्त्री प्रो. प्रसन्नकुमार आचार्य ने किया है और इसको स्थापत्य ग्रंथ की कोटि का बताते हुए यह जानकारी दी है कि बी.एच. केटलॉग में १५, जी. १४, १४ बी. एवं १६ पर यह परिगणित है। इसे १९०८ में महादेव रामचंद्र ने दूसरी बार उपकरणों और भवनों के आरेखन आदि के साथ प्रकाशित किया था। (एन एनसाइक्लोपीडिया ऑफ हिंदू आर्किटेक्चर, पृष्ठ ६५३) इसके अतिरिक्त इस

Scanned with CamScanner

ग्रंथकार के बारे अन्य कोई जानकारी नहीं मिलती।

'काश्यपशिल्प' के संपादक विनायक सूनु श्रीकृष्ण शर्मा ने शिल्पदीपक के रचनाकार का नाम नहीं दिया किंतु यही लिखा है कि यह ग्रंथ किसी सूत्रधार ने बारहवी सदी में रचा था- ख्रिस्ताद्बस्य द्वादशे शतके कोऽपि 'सूत्रधारः' शिल्पदीपकनामनं ग्रंथं लिखितवान्। (भूमिका पृष्ठ ९) किंतु, यह मत मिथ्या है।

महादेव रामचंद्र जागुष्टे के कथनाधार पर मैंने भी अपने 'राजवल्लभवास्तुशास्त्रम्' (भूमिका पृष्ठ २३ ) में उक्त मत को स्वीकार किया था किंतु जब इस ग्रंथ का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया तो पाया कि गङ्गाधर दक्षिण के न होकर गुजरात या दक्षिण राजस्थान के निवासी थे और चूंकि उन्होंने रामदैवज्ञ (१६०२ ई.) कृत 'मुहूर्तचिंतामणि' तथा उस पर पीयूषधारा टीका से श्लोकों को संगृहीत किया अतः वह राम दैवज्ञ का परवर्ती ही था। चूंकि उसके ग्रंथ में परवर्ती अन्य किसी ग्रंथ का कोई श्लोक नहीं है, ऐसे में उसे १७वीं सदी में स्वीकारना होगा किंतु चूंकि रामदैवज्ञ कृत ज्योतिषग्रंथ का सर्वप्रथम और सर्वाधिक प्रचार उत्तर और पश्चिम भारत में ही अधिक हुआ अतः गङ्गाधर का क्षेत्र भी यही मानना होगा। उसके अन्य उपस्कारक ग्रंथ भी मेवाड़ व गुजरात में प्रचलित ग्रंथ ही थे।

संभव है कि गङ्गाधर मेवाड़ के सूत्रधार परिवार से सम्बद्ध रहा हो किंतु वह मण्डन के गजधर परिवार से नहीं था क्योंकि उसके वंशवृक्ष में इस नाम का कोई व्यक्ति नहीं हुआ। यदि अंतःसाक्ष्य पर विचार करें तो ग्रंथ की किसी भी पुष्पिका में ग्रंथकार के विषय में कोई जानकारी नहीं है।

शिल्पदीपक के संग्रह में मुख्य रूप से सूत्रधार मण्डन के ग्रंथों का सहारा लिया गया है तथापि विश्वकर्मीय मतानुसारी ग्रंथों का उपयोग भी हुआ है, जो इसके उत्तर भारतीय वास्तु परंपरा सम्मत ग्रंथ होने की पुष्टि करता है। गङ्गाधर के मुख्य उपस्कारक ग्रंथ हैं-

१. *राजवल्लभवास्तुशास्त्र* अपरनाम राजवल्लभमण्डनम् (सूत्रधारमण्डन कृत)

२. *वास्तुमण्डनम्* (सूत्रधारमण्डन कृत)

३. *आयतत्त्वम्* (सूत्रधारमण्डन कृत)

४. *ज्ञानप्रकाशदीपार्णव* (विश्वकर्माभाषित)

५. *क्षीरार्णव* या नारदशिल्प (विश्वकर्माभाषित)



६. *अपराजितपृच्छा* या सूत्रसंतानगुणमञ्जरी (आचार्य भुवनदेवकृत)

७. *मुहूर्तचिंतामणि* (रामदैवज्ञकृत) और गोविंद दैवज्ञ की पीयूषधारा टीका

८. *समराङ्गणसूत्रधार* (धाराधिप भोजकृत)

९. *सच्छिल्पशास्त्र* (विश्वकर्माभाषित) इत्यादि।

इन ग्रंथों से छह प्रकरणों में गृह निर्माण प्रयोजन, निर्माणकाल, दिक्साधन, भूमि परीक्षा, शुभाशुभ वृक्ष, गजभेद, हस्तविभाग, देवता, सूत्रधार लक्षण, वास्तुपूजन, आयादि षड्वर्ग, गृहलक्षण, विविध शालगृह, विविध मुहूर्त, ज्योतिष ज्ञानाश्रित नक्षत्रादि को दिया गया है। मूलतः यह मानव वास्तु से सम्बद्ध है तथापि तृतीय प्रकरण में चार श्लोक प्रासाद पर ध्वजारोहण के प्रसंग के आ गए हैं। निर्दोष वास्तु विचार इसकी अपनी विशेषता है।

विषयानुक्रमणिका के अनुसार वास्तुविषयक बुनियादी विचार इस ग्रंथ में दिए गए हैं अतः इसे वास्तु संग्रह कोटि का ग्रंथ माना जा सकता है। वास्तु एवं शिल्पग्रंथों के ऐसे ही संग्रहों की हमारे यहाँ पर सुदीर्घ परंपरा रही है। मण्डनादि ने भी प्रारंभ में ऐसे ही निबंध ग्रंथ ही लिखे, तदनंतर स्वतंत्र ग्रंथों का प्रणयन किया था।

**प्रस्तुत पाठ-**

जैसा कि पूर्व में कहा गया है कि शिल्पदीपक का प्रकाशन गुजरात से हुआ है। इसका प्रथम संस्करण कब निकला, ज्ञात नहीं किंतु १९०८ ई. में इसका द्वितीय संस्करण निकला था। इसके बाद भी इसका पुनर्मुद्रण हुआ। विडम्बना है कि इसके प्रकाशित पाठ में त्रुटियों की भरमार है। ग्रंथ में छह प्रकरण दिए गए हैं और लगभग सभी श्लोकों का पाठ भ्रष्ट है। राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् के सम्पादन के दौरान इस ग्रंथ से सहायता की अपेक्षा रखी गई थी किंतु इसमें उद्धृत राजवल्लभ. ही नहीं, किसी भी ग्रंथ का कोई भी श्लोक शुद्ध नहीं मिला। इसी कारण श्लोकों का अर्थ भी कई स्थानों पर अनुचित था। इसका गुजराती अनुवाद पण्डित गोवर्द्धन ने किया था, जैसा कि प्रकाशित पाठ के प्रथम प्रकरण के प्रथम श्लोक से बोध होता है- *स्मृत्वास्वचित्तेसततंगणेशं गोवर्धनाख्योधरणीसुरोऽहम्। श्रीशिल्पदिपकसंज्ञकस्य व्याख्यासुभाषांसरलाप्रकुर्वे॥*

पूर्वोक्त त्रुटित पाठ को विद्वज्जनसम्मत बनाने के उद्देश्य से जब इसके सभी श्लोकों के उपस्कारक ग्रंथों के शोधानुसंधान का विचार आया तो इसका प्रस्तुत पाठ तैयार हुआ। पूर्व ग्रंथ में श्लोकों का क्रम अनुचित था, कई श्लोकों पर अंक भी नहीं थे।

Scanned with CamScanner

प्रकरणों का नामाभिधान नहीं था, श्लोकों पर उपशीर्षकों का भी अभाव था। न कहीं यह संकेत था कि श्लोक किस विषय को स्पष्ट कर रहा है।

इसी कारण इस पाठ में सर्वप्रथम श्लोकों के मूल स्वरूप को खोजकर दिया गया है, वहीं प्रत्येक विषयवार श्लोक पर उपशीर्षक भी दिया गया है। प्रत्येक श्लोक का सही-सही, विद्वज्जनसम्मत आशय भी देने का भी उपक्रम किया गया है। कुछ श्लोकों को विषयक्रम से सम्बद्ध करते हुए उनका क्रम भी बदला गया है और उस ग्रंथ का नामोल्लेख भी कर दिया गया है। कुछ स्थानों पर तुलना के लिए मूल पाठ को पाठ टिप्पणी के रूप में दिया गया है किंतु जहां श्लोक में त्रुटियाँ अधिक थी, वहाँ इस जटिलता से बचने का प्रयास भी किया गया है। इसमें यथास्थान चक्र, चित्रादि भी दिए गए हैं और इनमें से कई तो पहली बार तैयार किए गए हैं।

इसके अतिरिक्त अधिकांश श्लोकों के विषय को स्पष्ट करने के लिए वास्तु एवं ज्योतिष के आकर ग्रंथों में से कई ग्रंथों के श्लोकों, मतों को उद्धृत किया गया है जिनकी सूची अंत में दी गई है। ग्रंथान्त में शास्त्रोक्त शिलान्यास विधि, श्लोकानुक्रमणिका और संदर्भ ग्रंथों की सूची भी दी गई है।

***

## विषयानुक्रमणिका

### प्रथम प्रकरणम्


| | |
|---|---|
| मङ्गलाचरणम्- | १ |
| वास्तुशास्त्रप्रणेता विश्वकर्माध्यानम्- | १ |
| सूत्रधारलक्षणम्- | २ |
| गृहारम्भमुहूर्तम्- | २ |
| मानप्रमाणमाह- | २ |
| परमाणौ ज्ञातेऽङ्गुलप्रमाणज्ञानमाह- | २ |
| हस्तविभागानां देवाः | ४ |
| तद्दैवपीडने दोषाः | ५ |
| हस्तधारणविधिः | ५ |
| अपरस्तालादि परिमाणः | ६ |
| सूत्रभेदाः | ६ |
| गृहारंभमासफलादीनां दीपार्णवे- | ६ |
| चैत्रादिद्वादशमासफलं- | ७ |
| खातार्थतिथिमाह- | ७ |
| सौरमासविचारः | ८ |
| सौरमासपरत्वेन द्वारविचारः | ८ |
| दिक्साधनम्- | ९ |
| मार्कटिकाशङ्क्वादिक्रियाः | १० |
| गृहेशराशिवशाद्द्वारचर्चा- | १० |

ब्राह्मणादीनां शस्ता भूमयः	११
भूमिपरीक्षणान्तरं कर्तव्यकर्म-	११
भूमिपरीक्षा:	१२
प्लवविचारः	१२
कीलस्थापनविधिः	१३
भूमिशोधनार्थ शल्योद्धारः	१३
प्रश्नानुसारेशल्यज्ञानं ज्योतिर्निबंधे माण्डव्यमते-	१४
अ प्रश्नाक्षरफलम्-	१४
क प्रश्नाक्षरफलम्-	१४
च प्रश्नाक्षरफलम्-	१५
ट प्रश्नाक्षरफलम्-	१५
त प्रश्नाक्षरफलम्-	१५
प प्रश्नाक्षरफलम्-	१५
य प्रश्नाक्षरफलम्-	१६
श प्रश्नाक्षरफलम्-	१६
ह-ष-य प्रश्नाक्षरफलम्-	१६
शल्यज्ञानमुक्तावश्यकतामाह प्रतिष्ठासारसमुच्चे-	१७
संक्रान्त्यानुसारे खातविधि-	१८
शिलान्यासदिशाज्ञानम्-	१८
भित्तिमूलस्थापनप्रमाणम्-	१९
पञ्चसु कर्मसु वास्तुपुरुषपूजनम्-	१९
तत्फलानि-	२०
वृक्षविशेषच्छेदननिषेधः गृहसमीपे शुभवृक्षः	२०
वृक्षच्छायादि निर्णयः	२१




**द्वितीय प्रकरणम्**


एवं पिण्डानयनं कृत्वाऽऽयाद्यानयनं कार्यम्। तत्रादौ तदुपयोगित्वम्-	२४
आयनामानि-	२४
वर्णानुसाराय प्रदातव्यस्थानानि-	२५
आयफलाफलम्-	२५
ध्वजाय स्थानानि-	२६
धूम्रायस्थानानि-	२६
सिंहाय स्थानानि-	२६
श्वानाय स्थानानि-	२६
वृषाय स्थानानि-	२७
खराय स्थानानि-	२७
गजाय स्थानानि-	२७
ध्वाङ्क्षाय स्थानानि-	२८
परस्परदेयाय-	२८
आयज्ञानस्य रीत्यादीनां-	२८
भक्षकायज्ञानमाह-	२९
आय स्वरूपमाह-	२९
केषां गृहे कीदृशो हस्तोऽपेक्षितः	३१
अथ क्षेत्रफलानयनमाह-	३२
मूल राश्यात् नक्षत्राङ्कानयन विधिः	३२
गणनक्षत्रगणमैत्रीगुणदोषश्च-	३३
नक्षत्रनामानि देवगणनक्षत्राणि-	३३
राक्षसगण नक्षत्राणि-	३३
मनुष्यगण नक्षत्राणि-	३३




Scanned with CamScanner

मूलादिषु नवसु अधोमुखेषु वाप्यादिषुखातारंभं- ३४
ज्येष्ठादिषुनवसु तिर्यग्मुखेषु हयादि दमनं- ३४
पुष्यादिषु नवसु ऊर्ध्वमुखेषु ऊर्ध्वकार्याणि- ३५
राश्यानयन विधिः ३६
नक्षत्रस्य राशयः ३६
चन्द्रदिशाविचारमाह- ३७
चन्द्रफलमाह- ३७
अन्यच्च- ३७
राशिमैत्री इष्टाऽनिष्टभावमाह- ३७
गृहमैत्रीराशिस्वामी च फलमाह- ३८
ग्रहमैत्री शिल्परत्नाकरे- ३९

## तृतीय प्रकरणम्

व्ययानयनम्- ४१
व्ययाष्टसंज्ञानि- ४२
आयमिश्रितव्ययफलमाह- ४२
अशंकानयनम्- ४३
इंद्रांशस्थानानि- ४४
यमांशस्थानानि- ४४
राजांशस्थानानि- ४४
ताराविचारः राजवल्लभवास्तुशास्त्रे- ४५
तारासंज्ञानि- ४६
आधिपत्यानानयनम् सच्छिल्पतंत्रे क्षीरार्णवे च- ४७
अधिपत्यर्थ अन्यविधि च संज्ञानि- ४७
उत्पत्तिः ४७



अधिपतिवर्गवैरमाह क्षीरार्णवे- ४८
योनिविचारमाह- ४८
नक्षत्रमैत्रीवैरञ्च तत्रैव- ४९
नाडीवेधः राजवल्लभवास्तुशास्त्रे- ४९
क्रमप्राप्तकूटप्रधानं नाडीकूटं रामदैवज्ञमते- ५०
गृहाणामुत्सङ्गादिसंज्ञा राजवल्लभवास्तुशास्त्रे- ५१
द्वार-खटकीस्थापनविचारः तत्रैव- ५२
नियमविरुद्धद्वारफलमाह- ५३
द्वारदोषानाह मण्डनः ५३
दशविधद्वारमाह- ५४
कपाटस्य स्वयमुद्घटितादिके फलम्- ५५
देवालयादि अवरोधे फलमाह- ५५
प्रासादेध्वजदण्डप्रमाणमाह प्रासादमण्डने- ५६
ध्वजदण्डस्यविस्तारः ५६
दण्डप्रकारः ५७
दण्डस्यमर्कट्यानि- ५७
ध्वजमानम्- ५८

## चतुर्थ प्रकरणम्-

वास्तुदोषादीनां- ६१
द्वारस्थापनविधिः ६१
गृहार्थद्वारविभाजनविधिः ६१
पदभागेस्तम्भविधिः ६२
स्तम्भस्थापनविधिः ६२
पदहीनकार्यफलमाह- ६३

Scanned with CamScanner

द्वैगृहेमेकस्तम्भवर्जिते- ६३
कपाटविचार: ६४
दिङ्मूढफलमाह- ६४
पूर्णबाहुगृहफलमाह समराङ्गणे- ६५
निर्माणाकारनुसारेफलमाह- ६६
भूमौ विचार:- ६६
अन्यान्य वेधादीनां- ६७
कुक्ष्यादिद्वारफलमाह- ६७
वेध सदावर्जयेत्- ६७
समूलगृहफलञ्च- ६८
प्रतिकारगृहफलमाह- ६८
युग्मगृहफलञ्च- ६८
अंतकाख्यगृहफलञ्च- ६९
अप्रयोज्यप्रयोज्यम्- ६९
वास्तुभङ्गात्दोष: ६९
गुणदोषविचारमाह क्षीरार्णवे- ७०
कोणविचार: ७१
राहुविचारमाह- ७१
पूजादिनाविचारमाह- ७२
विशेषोच्च- ७२
गवाक्षस्थापनमाह- ७२
द्वारतलं विशेष: ७३
नलहीनगृहफलञ्च- ७४
तत्वानुसारगृहायुष्यत्थाविनाशम् क्षीरार्णवे- ७४



विशेषोच्च सच्छिल्पतंत्रे- ७५
विवक्षितशालाधुवाङ्कानयनं पथ्यावक्राख्येनाह रामदैवज्ञे- ७६
विवक्षितध्रुवानयनमभिधायेदानीं ध्रुवादीनां नामाक्षरसङ्ख्यां- ७६
अथ ध्रुवादिषोडशगृहाणां नामानि रामदैवज्ञे- ७६

**पञ्चम प्रकरणम्**

राजगृहाणां मानम् चक्रवर्तिनो गृहप्रमाणम्- ७९
द्वापरदृष्टान्तपूर्वकं राजगृह प्रमाणम्- ७९
महामण्डलिकलक्षणम् तद्गृहमानञ्च- ७९
नृपमाण्डलिकसामन्तोर्लक्षणं तद्गृहप्रमाणञ्च- ८०
सामन्तलक्षणम् तद्गृहप्रमाणञ्च- ८०
चतुराशिकलक्षणम् तद्गृहप्रमाणञ्च- ८१
स्वल्पराष्ट्रलक्षणं तद्धर्म्यमानञ्च- ८१
मन्त्रिगेहमानम्- ८१
साधारणमनुष्याणाम् गृहं- ८१
एकादिभूमिकप्रमाणम्- ८२
भित्त्योप्रमाणम्- ८२
उत्तमादिवर्गेनेष्टिकाबाह्यभित्त्यो: ८२
द्वारविचार: ८३
प्रतोल्यादिबहिर्द्वारं- ८३
दीपस्थानम्- ८४
द्वारस्थापनविचार: ८४
दशविधद्वार: ८५
कपाटस्य स्वयमुद्घटितादिके फलम्- ८६
देवालयादि अवरोधे फलम्- ८६

Scanned with CamScanner

स्तंभादिविचार: ८७

छाद्यस्य फलानि लक्षणञ्च- ८७

अत्रैव आरोहणम्- ८८

बहिर्द्वारकर्णेविशेष: ८८

जीर्णगृहेविचार: ८८

गृहाच्चतुर्दिक्षु अभिवर्धने फलानि- ८९

विविधकक्षाणि- ८९

अश्वादिगृहाणि- ८९

गर्दभादीनां गृहाणि- ९०

नृत्यशालादीनां निवेश: ९०

अन्येषां गृहाणि- ९१

विद्यावाद्यभोजनपाकगृहाणि- ९१

बहिर्द्वारन्यास: ९१

दिक्शालान्ते कर्तव्यम्- ९२


## षष्ठः प्रकरणम्


नामर्क्षाद् ग्रामवासे शुभाशुभमुक्तं मुहूर्तचिंतामणौ- ९३

राशिपरत्वेन ग्रामनिवासे निषिद्धस्थानान्याह- ९३

ध्वजान्वदन्नायैर्वर्णपरत्वेन द्वारं निवेशनम्- ९४

गृहारम्भे विशिष्टकालेनिषेधम्- ९५

तिथिपरत्वेन द्वारनिषेधम्- ९६

गृहारम्भे पञ्चाङ्गशुद्धिं- ९७

गृहकूपादिनिर्माणदिगवस्थित्या फलं- ९७

गृहारम्भप्रसक्त्या सामान्यतः प्राग्लग्नबलमप्यभिधायेदानीमारब्धगृहाणां नियत स्थानावस्थित्या नियतायुर्दाययोगद्वयम्- ९८





अन्यन्नियतायुर्दाययोगद्वयम्- ९९

लक्ष्मीयुक्तगृहयोगम्- १००

गृहस्थ परहस्तगामित्वयोगम्- १००

गृहारम्भे नक्षत्रविशेषेण च फलविशेषाच्छुभसूचकफलविशेषं योगद्वयं- १०१

अन्यद्योगद्वयमशुभदातृ- १०१

शुभफलदमेवयोगम्- १०२

विशेषमाह वसिष्ठः १०२

केषाञ्चिन्मतेन द्वारचक्रं सफलम्- १०३

अपूर्वप्रवेशसुपूर्वप्रवेशयोः कालशुद्ध्यादिकम्- १०३

जीर्णगृहादिविषयकप्रवेशविशेषम्- १०४

गृहप्रवेशदिनात् प्राक्कर्तव्यां वास्तुपूजां विवक्षुस्तन्नक्षत्राणि- १०४

वशिष्ठोक्त वास्त्वध्यायः परिशिष्टे- १०५

तत्र तावत्प्रवेशलक्षणम्- १०५

एकाशीतिकोष्ठकम्- १०५

तत्र देवतास्थानानि- १०६

प्रार्थना: १०९

लग्नशुद्धिं तिथिशुद्धिम् रामदैवज्ञमते- १०९

वामगतार्कज्ञानं तिथिपरत्वेन पूर्वाद्यभिमुखगृहप्रवेशम्- ११०

गृहप्रवेशे कलशवास्तुचक्रम्- १११

गृहप्रवेशप्रकरणोपसंहारं सूचयन्- ११२

चंद्रवासज्ञानमाह ग्रंथांतरे- ११३

चंद्रस्थित्यानुसारे फलम्- ११३

ध्रुवगणं तत्कृत्यञ्च रामदैवज्ञे- ११५

चरगणं तत्कृत्यञ्च- ११५


Scanned with CamScanner

उग्रगणं तत्कृत्यञ्च- ११५
मिश्रगणं तत्कृत्यञ्च- ११५
लघुगणं तत्कृत्यञ्च- ११५
मृदुगणं तत्कृत्यञ्च- ११६
तीक्ष्णगणं तत्कृत्यञ्च ११६
यमघंटयोगज्ञानमाह ग्रंथान्तरे- ११६
यमघण्टयोगाफलाफलम्- ११७
कालवासविचार: ११७
सफलायोगिनीचरामदेवज्ञै- ११७
वारशूलनक्षत्रशूलञ्च- ११८
शुभाशुभसूचकेत्वेन द्वेधा शकुना: सन्ति। तान् वक्तुकामस्तावच्छु-
भसूचकाञ्छकुनान् मुहूर्तचिंतामणौ- ११९
अशुभसूचकान् शकुनान्- १२०
आवश्यककर्तव्यायां यात्रायां विरुद्धे शकुने जाते किं कर्त्तव्यम्- १२२
शिलान्यासपद्धति: १२३
श्लोकानुक्रमणिका- १२७

विश्वकर्मा-चार मानसपुत्र

श्रीगणेशाय नमः

# ॥ अथ शिल्पदीपक ॥

## गङ्गाधरभट्टेनसंगृहीतो वास्तु च शिल्पशास्त्रम्

## अथ मिश्रकलक्षणम् नाम प्रथम प्रकरणम्

मङ्गलाचरणम्–

**शास्त्रोत्तमशास्त्रे शिल्पशास्त्रे गृहं हर्म्यप्रासादकं**
**यानश्च नानोपस्करै येन प्रोक्तमयाविश्वकर्मादीनां।**
**गृहकार्यार्थावश्यकत्वं नाना विषयान्वितार्णवे**
**संगृहीत्वं सारमादाय कुरुतो ग्रंथे शिल्पदीपकः[१] ॥ १ ॥**

शास्त्रों में उत्तम शास्त्र के रूप में स्वीकार्य शिल्पशास्त्र में मय, विश्वकर्मादि वास्तुविदों ने गृह, हर्म्य, प्रासादादि सहित यान और अन्य उपस्करों के विषय में बहुत कुछ लिखा है। यहां उस शिल्पशास्त्र रूपी सिंधु से सार ग्रहणकर गृहोपयोगी कुछ विषयों को इस शिल्पदीपक ग्रंथ के रूप में संगृहीत किया गया है।

अथ वास्तुशास्त्रप्रणेता विश्वकर्माध्यानम्–

**कम्बासूत्राम्बुपात्रं वहति करतले पुस्तकं ज्ञानसूत्रम्**
**हंसारूढस्त्रिनेत्रः सुरमुकुटशिराः सर्वतो वृद्धकायः।**
**त्रैलोक्यं येन सृष्टं सकलसुरगृहं राजहर्म्यादिहर्म्यं**
**देवोऽसौ सूत्रधारो जगदखिलहितः पातु वो विश्वकर्मा ॥ २ ॥**

जिनके एक हाथ में कंबा, गज, दूसरे में सूत्र, तीसरे में कमण्डल व चौथे में पुस्तक हैं, जिनके सिर पर शुभ मुकुट, जो त्रिनेत्रधारी और हंस पर सवार है, ऐसे भगवान् विश्वकर्मा ने तीनों ही लोक की रचना की है और जन सामान्य के लिए गृहों का

---

१. 'स्मृत्वा स्वचित्तेसततं गणेशं गोवर्धनाख्यो धरणीसुरोऽहम्। श्रीशिल्पदीपकसंज्ञस्य व्याख्यासुभाषां सरला प्रकुर्वे ॥' मिति प्रकाशितपाठे गुर्जरात्रीवाण्यां व्याख्याकार श्रीगोवर्द्धनोक्ति।

Scanned with CamScanner

निर्माण किया है वे सदैव हमारे रक्षक सिद्ध हों।

सूत्रधारलक्षणम्-

**सुशीलश्चतुरो दक्षः शास्त्रविज्ञो लोभवर्जितः।**
**क्षमायुक्तौ द्विजश्चैव सूत्रधारः स उच्चते॥ ३॥**

जो सुशील, चतुर, सब कार्यों में प्रवीण, शास्त्रज्ञानी, लोभ रहित, शांतिप्रिय, क्षमायुक्त और पाण्डित्य गुण संपन्न हो, वही व्यक्ति सूत्रधार होने योग्य है।

अथ गृहारम्भमुहूर्तम्-

**शस्तमासे[1] सितपक्षे चातीते[2] चोत्तरायणे।**
**चन्द्रताराबले भर्त्तु[3] सुलग्ने च शुभे दिने॥ ४॥**

वास्तुकार्यारम्भ के लिए प्रशस्तमास, शुक्लपक्ष और सूर्य के उत्तरायण काल सहित गृहस्वामी के चन्द्र-ताराबल, शुभ लग्न तथा शुभ दिन को देखना चाहिए। (*श्रीसोमेश्वरभूपति उक्तश्च- उपभोगाः प्रवक्ष्यन्ते विस्तरेण मयाऽधुना। नाम्ना ये पूर्वमुद्दिष्टा विंशतिस्तु यथाक्रमम्॥ वैशाखे फाल्गुने मार्गे सहस्ये श्रावणे तथा। शुक्लपक्षे गृहान्कुर्यात्सर्वकामफलप्रदान्॥ मानसोल्लास द्वितीयभाग, तृतीयविंशति १, १-२*)

अथ मानप्रमाणमाह-

**मात्रा प्रोक्ताष्टभिजष्टानिस्तुषेश्चैव यवोदरेः।**
**मात्राभिस्तिसृभिः पर्वप्रोक्ताः पर्वष्टभिकरः॥ ५॥**

वास्तु आदि कार्य के लिए सर्वप्रथम मान पर विचार किया जाना चाहिए। मान के लिए न्यूनतम इकाई के प्रसंग में ज्ञातव्य है कि एक बिना छिले यव (जौ) की मात्रा उत्तम कही गई है। तीन मात्रा का एक पर्व और आठ पर्व का एक गज कहा गया है। इसी प्रकार सात यव की मध्यम मात्रा और छह यव की कनिष्ठ मात्रा होती है। इन्हीं मात्राओं के अनुसार उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ गज होते हैं।

अत्र परमाणौ ज्ञातेऽङ्गुलप्रमाणज्ञानमाह-

**छाया चानूरेणुकेशाग्रलिक्षायूकाः**
**प्रोक्ताः स्याद्यवस्त्वङ्गुलं हि।**

---

१. 'शुभमासे' मिति प्रकशित पाठे।
२. 'अतिते' तत्रैव।
३. 'चंद्रताराबलंर्तु' तत्रैव।



**छायादिभ्योऽष्टघ्नमानस्य वृद्धिः**
**प्रोक्तां हस्तो जैनसङ्ख्याङ्गुलैश्च॥ ६॥**

माप आदि के संदर्भ में ज्ञातव्य है कि छाया को आठ से गुणा करने पर एक अणु होता है। इसी तरह आठ अणु का एक रेणु, आठ रेणु का एक केशाग्र, आठ केशाग्र की एक लिक्षा, आठ लिक्षा की एक यूका, आठ यूका का एक यव या जौ, आठ जौ का एक अङ्गुल और २४ अङ्गुल का एक हाथ (गज) होता है।

| क्रम | हस्त प्रकार | मान | उपयोग |
|---|---|---|---|
| १. | ज्येष्ठ हस्त | अङ्गुलमान ८ यवमध्य | ग्राम, नगर, क्रोश व योजन का मापन |
| २. | मध्यम हस्त | अङ्गुलमान ७ यवमध्य | देवालय, प्रतिमा, राजभवन व हर्म्य मापन |
| ३. | कनिष्ठ हस्त | अङ्गुलमान ६ यवमध्य | वाहन, शय्या, छत्र, आसन, अस्त्रादि मापन |

मंडन ने देवतामूर्तिप्रकरणम् में मानतालिका इसी प्रकार दी है- *छाया रेणु(श्च) बालाग्र-लिक्ष-यूका यवोऽङ्गुलः। क्रमाद्दशगुणं मानं जिनसंख्यैः करोऽङ्गुलैः॥ (२,१)*

विश्वकर्माप्रकाश का मत है कि २४ अङ्गुल का एक हाथ, ४ हाथ का एक दण्ड और दो हजार दण्ड का एक कोस होता है। चार कोस के बराबर एक योजन होता है। दस हाथ का एक बाँस और २० बाँसों का चारों भुजाओं के बराबर क्षेत्र निवर्तन क्षेत्र कहा जाता है- *चतुर्विंशत्यङ्गुलैस्तु हस्तमानं प्रचक्षते। चतुर्हस्तो भवेद्दण्डः कोशं तद् द्विसहस्रकम्। चतुष्क्रोशं योजनं तु वंशो दशकरैर्मितः। निवर्तनं विंशतिकरैः क्षेत्रं तच्च चतुष्करैः॥ (विश्वकर्मा ४,३७-३८)*

वराहमिहिर (बृहत्संहिता ५८, १-२) ने परमाणु क्रम से अङ्गुलादि का संक्षिप्त मान पूर्वाचार्यों के मतानुसार दिया है-

*८ परमाणु = १ रज*

*८ रज = १ वालाग्र*

*८ वालाग्र = १ लिक्षा*

*८ लिक्षा = १ यूका*

Scanned with CamScanner

८ यूका = १ यव

८ यव = १ अङ्गुल

इसी प्रकार मत्स्यपुराण (२५८, १७-१८) का कथन है-

८ त्रसरेणु = १ वालाग्र

८ वालाग्र = १ लिख्य (लिक्षा?)

८ लिक्षा = १ यूका

८ यूका = १ यव

८ यव = १ अङ्गुल

हस्तविभागानां देवा:

**रुद्रो वायु: विश्वकर्मा हुताशो**
**ब्रह्मा कालस्तोयप: सोम विष्णु।**
**पुष्पे देवा मूलतोऽस्मिंश्च मध्यात्**
**पश्चाष्टान्त्यं द्वय( ?ह्य )ग्निवेदैर्विभज्यम्॥ ७॥**

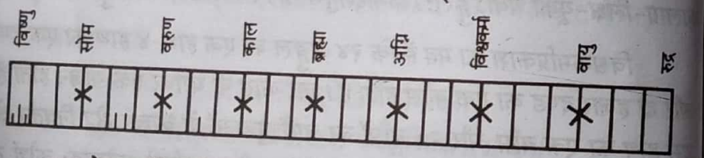


हस्त के आठों पुष्पों में प्रारंभिक सिरे के देवता रुद्र हैं तथा पहले फूल या चौकड़ी का देवता वायु, दूसरे का विश्वकर्मा, तीसरे का अग्नि, चौथे का ब्रह्मा, पांचवें का काल, छठे का वरुण, सातवें का सोम तथा आठवें फूल के देवता विष्णु हैं। गज के मध्य भाग के बाद शेष भाग के पाँचवें तसू या पर्व के दो भाग, आठवें पर्व या तसू के तीन भाग तथा अंतिम तसू के चार भाग करने चाहिए।

**ईशो मारुतविश्ववह्निविधय: सूर्यश्च रुद्रो यमो**
**वैरूपो वसवोऽथ दन्तिवरुणौ षड्वक्त्र इच्छाक्रिया।**
**ज्ञानं वित्तपतिर्निशापतिजयौ श्रीवासुदेवो हली**
**कामो विष्णुरिति क्रमेण मरुतो हस्ते त्रयोविंशति: ॥ ८॥**

एक गज के चौबीस पर्व या तसू के २३ अङ्क या रेखाएं होती हैं, जिन पर एक-



एक देवता की स्थापना करनी चाहिए। प्रथम रेखा पर शिव का स्थान है। दूसरी पर वायु की, तीसरी पर विश्वकर्मा की, चौथी पर अग्नि की, पाँचवीं पर ब्रह्मा की, छठी पर सूर्य की स्थिति होती है। इसी तरह सातवीं पर रुद्र, आठवीं पर यम, नौवीं पर विश्वकर्मा, दसवीं पर वसु, ग्यारहवीं पर गणपति, बारहवीं पर वरुण, तेरहवी पर कार्तिकस्वामी, चौदहवीं पर इच्छादेवी, पंद्रहवीं पर क्रियादेवी, सोलहवीं पर ज्ञान, सत्रहवीं पर कुबेर, अठारहवीं पर चंद्रमा, उन्नीसवीं पर जय, बीसवीं पर वासुदेव, इक्कीसवीं पर बालभद्र, बाईसवीं पर कामदेव तथा तेइसवीं रेखा पर विष्णु की परिकल्पना करनी चाहिए।

तद्दैवपीडने दोषा:

**उच्चाटनं रोगभयं च दु:खं वह्नेर्भयं पीडनकम्प्रजाया:।**
**मृत्युर्विनाशोऽपि धनक्षय: स्यान्मोह: क्रमाद्दैवतपीडनेन॥ ९॥**

कार्य के प्रारंभ में गज पकड़ते समय यदि कारीगर उसके मुख्य देवस्थान पर हाथ लगाए तो उच्चाटन, पहले पुष्प पर हाथ का दबाव लगे तो रोग, दूसरा पुष्प दबे तो दु:ख, तीसरा पुष्प पीड़ित हो तो आगजनी का भय रहता है। इसी तरह चौथा पुष्प पीड़ित हो तो बालक को दु:ख, पाँचवाँ पुष्प के पीड़ित होने पर मृत्यु, छठे पुष्प के पीड़ित होने पर कुटुंब का विनाश, सातवां पीड़ित हो तो धन हानि एवं आठवें पुष्प के पीड़ित होने पर मोहभ्रम उत्पन्न होने की आशंका होती है।

| क्रम | पीड़न देवता | फल |
|---|---|---|
| १. | रुद्र | उच्चाटन |
| २. | वायु | रोग |
| ३. | विश्वकर्मा | भय |
| ४. | अग्नि | दु:ख |
| ५. | ब्रह्मा | अग्निभय |
| ६. | यम | प्रजा को कष्ट |
| ७. | वरुण | मृत्यु, विनाश |
| ८. | सोम | धन की हानि |
| ९. | विष्णु | मोहांधता |

हस्तधारणविधि:

**हस्तो यत्नात् पुष्पयोरन्तराले**
**त्वष्टा धार्यो मन्दिरादेर्निवेशे।**

Scanned with CamScanner

**हस्ताद् भूमौ यात्यकस्मात्तदासौ**
**कार्ये विघ्नं दुःखमाविष्करोति॥ १०॥**

भवन का कार्य शुरू करते समय शिल्पी को गज दो पुष्पों के बी... सावधानीपूर्वक धारण करना चाहिए। यदि हस्त को उठाते समय वह भूमि पर गिर... तो काम में विघ्न होता है तथा दुःख भोगना पड़ता है।

अपरस्तालादि परिमाण:

**तालो द्वादशमातृ( त्रि ? ) कापरीमितस्तालद्वयं स्यात्करः**
**पादोनद्विकरोऽपि किष्कुरुदितश्चापं चतुर्भिः करैः।**
**क्रोशो दण्डसहस्त्रयुग्ममुदितो द्वाभ्यां च गव्यूतिका**
**ताभ्यां योजनमेव भूमिरखिला कोटीशतं योजनैः॥ ११॥**

बारह मात्रा या अङ्गुल का एक ताल होता है। दो ताल का एक हस्तमान ... गज होता है। इसी तरह पौने दो गज का एक किष्कु, चार गज का एक धनुष या दं... दो हजार धनुष का एक क्रोश, दो क्रोश के समान एक गव्यूतिका, दो गव्यूतिका क... एक योजन तथा ऐसे सौ योजन का एक कोटि होता है।

सूत्रभेदा:

**सूत्राष्टकं दृष्टि नृहस्तमौञ्जं**
**कार्पासजं स्यादवलम्बसंज्ञम्।**
**काष्ठं च सृष्ट्याख्यमतोऽविलेख्य-**
**मित्यष्ट सूत्राणि वदन्ति सन्तः॥ १२॥**

विषय विशेषज्ञों ने भवन निर्माण के लिए दृष्टि, गज, मुंज की डोरी, कर्पास की डोरी, अवलंब या साहुल, काटखुणा (काष्ठ का गुनियां), सृष्टि (सांधणी या रेवल) तथा विलेख्य या परकाल- ये प्रकार आठ सूत्र कहे गए हैं।

*विश्वकर्माप्रकाश में भूमि शोधनार्थ सूत्र का निर्णय दिया गया है कि ब्राह्मण के लिए कुशा का सूत्र बनाना चाहिए। क्षत्रिय के लिए मूंज, वैश्य के लिए कपास या रुई तथा शूद्र के लिए शण का सूत्र बनाया जाए- विप्रस्य दर्भजं सूत्रं मौञ्जं तु क्षत्रियस्य च। कार्पासं च भवेद्वैश्यं शूद्रस्य शणजकल्पितम्॥*

अथ गृहारंभमासफलादीनां दीपार्णवे-

**( शुभेमासे सिते पक्षे आदित्ये चोत्तरायणे।)**





**चंद्रताराबलंभर्त्तु शुभे लग्ने शुभे दिने॥ १३॥**

अब ज्ञानप्रकाश दीपार्णव के मतानुसार गृहारम्भ के लिए मासादि पर विचार ...या जा रहा है। शुभ मास, शुक्लपक्ष और सूर्य जब उत्तरायण में हों तब गृह स्वामी ...ताराबल, शुभलग्न व शुभ दिन पर विचार कर गृहारंभ किया जाना चाहिए।

...त्रादिद्वादशमासफलं-

**चैत्रे शोककरं विद्यात् वैशाखे च धनागमम्।**
**ज्येष्ठे ( जेष्ठे ? )गृहस्तु पीड्यंते आषाढे पशुनाशनम्॥ १४॥**
**श्रावणे धनवृद्धिश्च शून्यं भाद्रपादे भवेत्।**
**कलहश्चाश्विने मासे भर्तुनाशश्च कार्तिके॥ १५॥**
**मार्गशीर्षे धनप्राप्ति पौषे च धन( काम ? )संपदः।**
**माघेऽग्निभयं विद्यात् फाल्गुने च श्रीयोत्तमा॥ १६॥**

... खात के लिए मुहूर्त पर विचार करें। चैत्र मास में खात कर्म किए जाने पर ...ककारी होता है। वैशाख में धन का आगमन होता है। ज्येष्ठमास में गृहस्वामी को ...ड़ा होती है व आषाढ़ मास में पशुधन का नाश होता है। श्रावण मास में गृहारंभ करने ...र धन की वृद्धि होती है व भाद्रपद मास का फल शून्य कहा गया है अथवा गृह विरान ...हता है। अश्विन मास में खात होने पर कलह होता है व कार्तिक में गृहपति का नाश ...ता है। मार्गशीर्ष मास में धन की प्राप्ति होती है जबकि पौष मास में धन (या काम ?) ...म्पदा का आगमन रहता है। माघ मास में खात कर्म किए जाने पर अग्निकाण्ड का भय ...हता है और फाल्गुन में खातकर्म श्रेष्ठ कहा गया है।

| क्रम | मास | फल | क्रम | मास | फल |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | चैत्र | शोक | ७. | आश्विन | कलह |
| २. | वैशाख | अर्थलाभ | ८. | कार्तिक | भृत्यनाश |
| ३. | ज्येष्ठ | मृत्यु | ९. | मार्गशीर्ष | धान्य |
| ४. | आषाढ़ | पशुनाश | १०. | पौष | धान्य |
| ५. | श्रावण | पशुवृद्धि | ११. | माघ | अग्निभय |
| ६. | भाद्रपद | शून्य | १२. | फाल्गुन | धनप्राप्ति |

...अत्रैव खातार्थतिथिमाह-

**( प्रतिपत्कृष्णपक्षीया द्वितीया वास्तुकर्मणि।)**
**तृतीया पञ्चमी चैव सप्तमी दशमी( ?नवमी )स्तथा।**

**एकादश्यां त्रयोदश्यां एते तिथिश्च सुखावहा ॥ १७॥**

गृहारंभ किए जाने के लिए कृष्णपक्ष की प्रतिपदा और दोनों पक्षों की द्विती तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, दशमी (पाठांतर से नवमी ?), एकादशी और त्रयोदशी तिथि शुभकारक होती है।

सौरमासविचार:

**आदित्ये हरिकर्कनक्रघटगे पूर्वापरास्यं गृहं**
**कर्तव्यं तुलमेषवृश्चिकवृषे याम्योत्तरास्यं तथा।**
**द्वारं भिन्नतया करोतिरोगोऽर्थनाशस्तदा**
**कन्यामीनधनुर्गते मिथुनगे चास्मिन्न कार्यं गृहम् ॥ १८॥**

सिंह, कर्क, मकर एवं कुंभ राशि के सूर्य में पूर्व तथा पश्चिम दिशा के द्वा तुला, मेष, वृश्चिक और वृष राशि के सूर्य में दक्षिण तथा उत्तर दिशा के द्वार वाले बनाए जाने चाहिए। इसके विपरीत कार्य करने से द्रव्य की हानि होती है, जब कन्या, मीन, धन व मिथुन राशि में सूर्य के रहते गृह निवेश वर्जित है।

**स्पष्टार्थ चक्र**

| सूर्य की स्थिति | द्वार की दिशा |
|---|---|
| सिंह, कर्क, मकर और कुंभ | पूर्व और पश्चिम दिशा |
| तुला, मेष, वृश्चिक और वृष | दक्षिण और उत्तर दिशा |

सौरमासपरत्वेन द्वारविचार:

**कन्यादित्रिषु पूर्वतो यमदिशि त्याज्यं च चापादितो**
**द्वारं पश्चिमस्त्रिके जलचरात् सौम्ये रवौ युग्मतः।**
**यस्माद्वत् समुखं दिशासु भवनद्वारादिकं हानिकृत्**
**सिंह चापि वृषं च वृश्चिक घटं याते हितं सर्वतः ॥ १९॥**

वत्समुख पर विचार करते हुए यह स्मरणीय है कि कन्या, तुला व वृश्चिक राशि के सूर्य में वत्स का मुख पूर्व में; धन, मकर व कुंभ राशि के सूर्य में वत्स का मु दक्षिण में; मीन, मेष व वृष राशि के सूर्य में वत्स मुख पश्चिम में तथा मिथुन, कर्क सिंह राशि का सूर्य होने पर वत्स का मुख उत्तर दिशा में रहता है। इस कारण वत्स के सामने गृह का दरवाजा रखने पर हानि और पृष्ठ में रखने से आयुष्य का क्षय होता है इसके विपरीत सिंह, वृष, वृश्चिक व कुंभ राशि के सूर्य में घर की चारों दिशाओं में द्वा



रखने से गृहेश को वत्स दोष नहीं होता है।

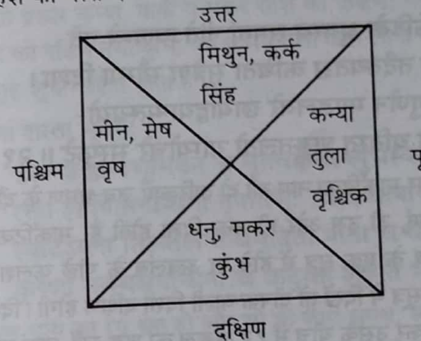


दिक्साधनम्-

**प्राची मेषतुला रवावुदयति स्याद्वैष्णवे वह्निभे**
**चित्रास्वातिभमध्यगा निगदिता प्राची बुधैः पञ्चधा।**
**प्रासादो भवनं करोति नगरं दिङ्मूढमर्थक्षयं**
**हर्म्ये देवगृहे पुरे च नितरामायुर्धनं दिङ्मुखे ॥ २०॥**

जिस दिशा में मेष एवं तुला राशि का सूर्योदय हो तथा श्रवण व कृतिका नक्षत्र का उदय हो उसे पूर्व दिशा जानना चाहिए। चित्रा एवं स्वाती नक्षत्र मध्यम में हों तो भी पूर्व दिशा ही मानी जाए। इस दिशा में आवास, महल बनाने या नगर बसाने से आयुष्य और धन की अभिवृद्धि होती है और इसके विपरीत कार्य करने से आयु व धन का क्षय होता है, ऐसा जानना चाहिए।

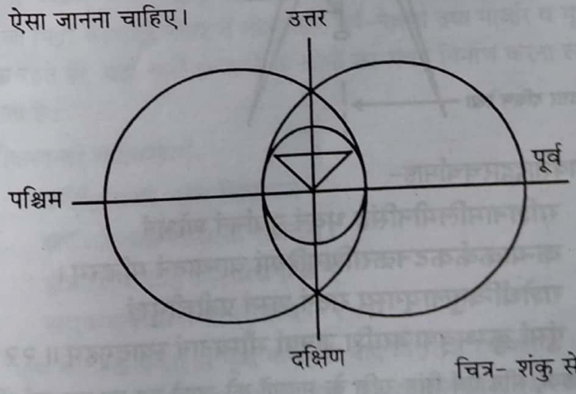


चित्र- शंकु से दिशा ज्ञान

Scanned with CamScanner

मार्कटिकाशङ्क्वादिक्रिया:

**तारे मार्कटिके ध्रुवस्य समतां नीतेऽवलम्बे नते**
**दीपाग्रेण तदैक्यतश्च कथिता सूत्रेण सौम्या दिशा।**
**शङ्कोर्नेत्रगुणेन मण्डलवरे छायाद्वयान्मत्स्ययो-**
**र्जाता यत्र युतिस्तु शङ्कुतलतो याम्योत्तरे सस्फुटे॥ २१॥**

ध्रुव तारे से ऊपर मार्कटिका नाम की दो तारिकाएं जब भ्रमण के दौरान तारे के साथ सीधी रेखा में आएं, तो उस ओर ही उत्तर दिशा होती है, मार्कटिका की दोनों तारिकाओं तथा अवलंब के एक सूत्र में होने पर अवलंब के पीछे कलश पर दीपक रखने से यदि दोनों एक सूत्र में दिखें तो दीपक वाली दिशा दक्षिण होगी। दिशा के लिए ३२ अङ्गुल का वृत्त बनाकर उसके बीच में १२ अङ्गुल का शङ्कु रखें, जहां उसकी छाया वृत्त में प्रवेश करे, वहां पश्चिम और जिधर सूर्योदय हो वह पूर्व दिशा होती है। इन दोनों बिंदुओं को मिलाने से उनके योग में की गई रेखा पूर्व-पश्चिम होगी, जबकि उत्तर-दक्षिण को मिलाने वाली रेखा याम्योत्तरा होती है।

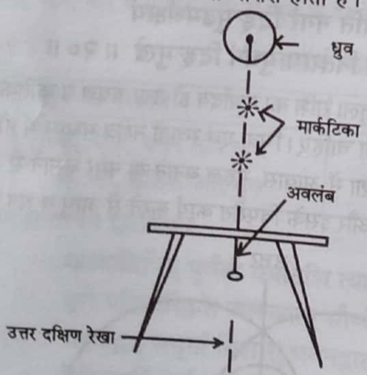


गृहेशराशिवशादद्वारचर्चामाह-

**राशिनामलिमीनसिंह भवनं पूर्वाननं शोभनं**
**कन्याकर्ककटनक्रराशिगृहिणां याम्याननं मन्दिरम्।**
**राशेर्धन्वितुलायुगस्य सदनं शस्तं प्रतीचीमुखं**
**पुंसां कुम्भवृषाजराशि जनुषां सौम्याननं स्याद्गृहम्॥ २२॥**

वृश्चिक, मीन एवं सिंह राशि के मनुष्यों को अपने गृह का द्वार पूर्व में रखना



चाहिए। इसी प्रकार कन्या, कर्क व मकर राशि को दक्षिण; धन, तुला व मिथुन राशि वाले जातक को पश्चिम तथा कुंभ,. वृष व मेष राशि वाले लोगों को उत्तर दिशा की ओर द्वार वाला गृह शुभ फलित होता है।

ब्राह्मणादीनां शस्ता भूमयः

**श्वेता ब्राह्मणभूमिका च घृतवद्गन्धा शुभस्वादिनी**
**रक्ता शोणितगन्धिनी नृपतिभूः स्वादे कषाया च सा।**
**स्वादेऽम्ला तिलतैलगन्धिमुदिता पीता च वैश्या मही**
**कृष्णा मत्स्यसुगन्धिनी च कटुका शूद्रेति भूलक्षणम्॥ २३॥**

जिस भूमि का रंग श्वेत हो और जो घी जैसी सुगंध, सुस्वादा हो वहां विप्रों को अपना गृह बनाना श्रेयस्कर होता है। रक्तवर्णा, रक्त जैसी ही गंध व कषाय स्वाद वाली भूमि पर क्षत्रियों; पीले रंग, तिल के तेल जैसी सुगंध एवं खट्टे स्वाद वाली भूमि पर वैश्यों और श्यामवर्णा, मछली जैसी गंध व काली मिर्च के स्वाद जैसी भूमि पर शूद्र लोगों का गृह बनाना लाभकारी माना गया है।

*महाभारत में कृष्णद्वैपायन व्यास का वचन है- ब्राह्मणां सितोवर्णः क्षत्रियाणां तु लोहितः। वैश्यानां पातको वर्णः शूद्राणामासितस्तथा। (शान्तिपर्व २८८, ५)*

सर्वेषां शस्ताभूमिः

**स्वादे भवेद्या मधुरा सिताभा चतुर्षु वर्णेषु मही प्रशस्ता।**
**स्नेहान्विता बभ्रुभुजङ्गयोर्वा सुहृद्वती चाखुबिडालयोर्वा॥ २४॥**

जो मिट्टी श्वेतवर्णा, स्वाद में मीठी और सर्प-नेवला तथा मार्जार व मूषक जहां प्रेमपूर्वक रहते हों, वहां चारों ही वर्णों के लोगों का भवन निर्माण करना लाभदायक माना जाता है।

भूमिपरीक्षणान्तरं कर्तव्यकर्म-

**परीक्षितायां भुवि विघ्नराजं**
**समर्च्चयेच्चण्डिकया समेतम्।**
**क्षेत्राधिपं चाष्ट दिशाधिनाथान्**
**सपुष्पधूपैर्बलिभिः सुखाय॥ २५॥**

भूमि की उक्त प्रकार से पूजा करने के बाद विघ्नराज गणपति व चंडिका का पूजन करके क्षेत्रपाल व आठों दिशाओं का पुष्प, धूप व बलिपूर्वक पूजन किए जाने से

Scanned with CamScanner

सुख की प्राप्ति होती है।

भूमिपरीक्षा:

**खातं भूमिपरीक्षणे करमितं तत् पूरयेत्तन्मृदा**
**हीने हीनफलं समे समफलं लाभो रजोवर्धने।**
**तत् कृत्वा जलपूर्णमाशतपदं गत्वा परीक्ष्यं पुनः**
**पादोनेऽर्धविहीनकेऽथ निभृते मध्याधमेष्टावनी॥ २६॥**

आवास के लिए भूमि की सम्यक् रीति से परीक्षा की जाए। इसके लिए ज घर बनाना हो उस भूखंड पर एक हाथ गहरा खड्डा खोदें और उसमें से निकली मि को पुनः उसी में भर कर देखें। यदि मिट्टी कम पड़ जाए तो वह भूमि हीन फल दे वाली है। समतल या बराबर हो तो साधारण फलदायक और यदि मिट्टी बच जाए त वह भूमि लाभदायक होती है। इसी प्रकार एक अन्य युक्ति से भी भूमि परीक्षा की ज सकती है। इसके लिए उक्त खड्ड को पानी से भरे और फिर सौ कदम दूर जा, लौटक देखें कि यदि एक चौथाई पानी घटता है तो वह भूमि मध्यम फलदायक, पानी के आ रहने पर अधम और कुछ भी कमी न होने पर वह भूमि वृद्धिकारक होती है, ऐसी भूमि पर गृह शुभ होता है।

प्लवविचार:

**भूमेः प्राक् प्लवनं च शङ्करककुप्सौम्याश्रितं सौख्यदं**
**वह्नौ वह्निभयं यमे च मरणं चौराद्भयं रक्षसि।**
**वायव्ये प्लवनं च धान्यहरणं स्याछोकदं वारुणे**
**विप्रादेरनुवर्णतश्च सुखदं सृष्टिक्रमात् सौम्यतः॥ २७॥**

जिस भूमि पर भवन निर्माण करना हो, वहाँ यदि पानी का बहाव पूर्व, उत्तर व ईशान दिशा की ओर हो तो सुख प्राप्त होता है। इसी तरह अग्निकोण की ओर बहाव से आगजनी का डर, दक्षिण की ओर होने से मृत्यु, नैर्ऋत्य कोण की ओर होने से चोर का डर, वायव्य कोण की ओर होने से अन्न का नाश तथा पश्चिम की ओर बहाव होने से दुःख की प्राप्ति होती है। दूसरी ओर कहा गया है कि उत्तर की ओर पानी के बहाव वाली भूमि ब्राह्मण के लिए श्रेष्ठ है। इसी प्रकार पूर्व में बहाव वाली क्षत्रिय, दक्षिण में बहाव पर वैश्य तथा पश्चिम की ओर बहाव होने वाली भूमि शूद्रों के लिए उत्तम मानी गई है। इस प्रकार भवन निर्माण के समय प्लव विचार कर सृष्टि क्रम से उसके फलाफल पर विचार करना चाहिए।



**स्पष्टार्थ चक्र**

| क्रम | दिशा | फल | क्रम | दिशा | फल |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | पूर्व, ईशान उत्तर प्लव | सुखद | ४. | नैर्ऋत्य | चोर भय |
| २. | आग्नेय | अग्निभय | ५. | वायव्यकोण | धान्य चोरी |
| ३. | दक्षिण | मृत्युभय | ६. | पश्चिम | शोक प्रदायक |

कीलस्थापनविधि:

**अग्नौ राक्षसवायुशङ्करदिशि स्थाप्याः क्रमात् कीलकाः**
**अश्वात्थात् खदिरात् शिरीषबकुलाद्वृक्षात् क्रमेण द्विजात्।**
**वर्णानां कुशमुञ्जकासशणजं सूत्र क्रमात् सूत्रणे**
**निम्ना भूः स्फुटितोषरा बिलवती शल्यैर्युता नो शुभा॥ २८॥**

जिस भूमि पर मकान बनाना हो, वहां सर्वप्रथम अग्निकोण में खूंटी रोपना चाहिए, उसके बाद क्रमशः नैर्ऋत्यकोण, वायुकोण, तथा ईशानकोण में। यदि ब्राह्मण का घर हो तो पीपल की लकड़ी की, क्षत्रिय का हो तो खेर की, वैश्य का हो तो सिरीष (सरस) की तथा शूद्र का गृह हो तो कुकुभ की लकड़ी की खूंटियां रोपे। खूंटियां गाड़ने के बाद इनके चारों ओर डोरी लपेटना चाहिए। इसमें भी ब्राह्मण का घर हो तो दर्भ (दाभ) की डोरी लपेटें। इसी तरह क्षत्रिय का होने पर मुंज की, वैश्य का होने पर काश अथवा कासड़ा की तथा शूद्र का घर होने पर सण की डोरी का उपयोग करें। खड्ड व दरारयुक्त, खारी, चूहे व सांपों के बिल वाली तथा खोदने पर हड्डियां निकले, ऐसी भूमि पर मकान बनाना वर्जित है।

| क्रम | गृहस्वामी का वर्ण | शंकु का काष्ठ | दिशा |
|---|---|---|---|
| १. | ब्राह्मण | अश्वत्थ या पीपल | आग्नेयकोण |
| २. | क्षत्रिय | खादिर या खैर | नैर्ऋत्यकोण |
| ३. | वैश्य | शिरीष या सरस | वायव्यकोण |
| ५. | शूद्र | ककुभ | ईशानकोण |

अथ भूमिशोधनार्थ शल्योद्धार:

**वल्मीकि निरुजं नित्यमुषरा स्फुटिता मृतिम्।**
**दत्ते भूःशल्य युग् दुःखं शल्यज्ञानमथामथोदवेत॥ २९॥**

Scanned with CamScanner

जिस भूमि पर उदेई के घर या वल्मीक हों, वहाँ पर गृह निर्माण से गृहप रोग होता है। जहाँ पर उसर हो, जो कटी-फटी भूमि हो, वहाँ पर गृह निर्माण से होती है। इसी प्रकार जहाँ पर शल्य हो, वह भूमि दुःखदायी होती है, इसलिए भू खोदकर शल्यविहीन किया जाना चाहिए।

अथ प्रश्नानुसारेशल्यज्ञानं-

ज्योतिर्निबंधे माण्डव्यमते-

**अकचटतपयशह या क्रमाद्वर्णानि मान्नव।**
**नवकाष्टीत्कृते भूमिभागे प्राच्यादितां लिखेत्[१] ॥ ३० ॥**

सर्वप्रथम प्रश्नानुसार भूमि में शल्य है या नहीं, इस पर विचार किया चाहिए। इसके लिए नौ कोष्ठक वाला चक्र बनाकर उसमें अ-क-च-ट-त-प-य- ह इस क्रम से वर्णों को प्राच्यादि क्रम से लिखा जाना चाहिए।

अ प्रश्नाक्षरफलम्-

**अः प्रश्नेस्याद्यदिप्राच्यां[२] नरशल्यं तदाभवेत्।**
**सार्ध हस्तप्रमाणेन तच्च मानुष्यमृत्यकृत्॥ ३१ ॥**

यदि प्रश्नकर्ता प्रथम अवर्गादि का अक्षर कहें तो पूर्व दिशा में मनुष्य की ह डेढ़ हाथ नीचे होगी, ऐसा मानना चाहिए। इससे व्यक्ति की मृत्यु का सङ्केत जान चाहिए।

क प्रश्नाक्षरफलम्-

**अग्नेर्दिशि[३] तु कः प्रश्ने शश( ?खर )शल्यं करद्वये।**
**राजदंडो भवेत्तस्य भयं नैव निवर्तते॥ ३२ ॥**

---

१. ज्योतिर्निबंधकार का कथन है कि अपने इष्टदेवता का स्मरण कर प्रश्न के आदि अक्षर को जान शल्य है या नहीं, यह विचार किया जाना चाहिए। सवप्रथम प्रश्नकर्ता के मुख से अ, क, च, ट, आदि वर्ण का जो अक्षर प्रथम उच्चारित हो, वह पूर्व दिशा से प्रारंभ कर मध्य पर्यंत शल्य कर वाले होते हैं- स्मृत्वेष्टदेवतां प्रश्नवचनस्याद्यमक्षरम्। गृहीत्वा तु ततः शल्याशल्यं सम्यग्विचार्यते अकचटतपयशषावर्णाः पूर्वादि वर्णान्ताः। शल्यकरा इह नान्ये शल्यगृहे विवसतां नाशः॥ (पृ १६६, १५-१६)
अन्यच्च- गृहभूमिं च नवधा विभज्य क्रमशो बुधः।
वर्णान्विन्यस्य जानीयाच्छुभाशुभमतः परम्॥ संग्रहशिरौमणौ २०, २४

२. 'पृच्छायां यदि अः प्राच्यां' मिति पाठांतरम्, ज्योतिर्निबंधे पृ. १६६, श्लो. १८।

३. 'आग्नेयां' तत्रैव श्लो. १९।



यदि क वर्ग का अक्षर पहले मुख से निकले तो अग्निकोण में दो हाथ नीचे शश या खरहा की हड्डी होती है, इसका फल राजदण्ड होता है तथा भय का दूरी कारण नहीं मानना चाहिए।

च प्रश्नाक्षरफलम्-

**याम्यां दिशि चस्य प्रश्ने नरशल्य तथा वदेत्।**
**तद् गृहस्वामिनोमृत्युं करोत्या कटिसंस्थितम्[१] ॥ ३३ ॥**

यदि प्रथम अक्षर च वर्ण का हो तो दक्षिण दिशा में मानव की हड्डी कहनी चाहिए। यह कटि के बराबर गहराई पर होती है। इसके होने पर घर स्वामी का मरण होता है अथवा दीर्घकाल पर्यंत रोग होता है।

ट प्रश्नाक्षरफलम्-

**नैर्ऋत्यां दिशि टः प्रश्ने सार्द्धहस्तादधतले।**
**शुनोस्थि जायतेतच्च बालानां जनयेन्मृतिम्[२] ॥ ३४ ॥**

यदि ट वर्ग का प्रथम प्रश्नाक्षर होता है तो नैर्ऋत्य कोण में डेढ़ हाथ नीचे कुत्ते का शल्य होता है। यदि यह घर में रहती है तो बालकों की मृत्यु जाननी चाहिए।

त प्रश्नाक्षरफलम्-

**तः प्रश्ने पश्चिमायां तु शिशोः शल्यं प्रजायते।**
**सार्द्धहस्तमिते तत्र स्वामिनं नेच्छति ध्रुवम्[३] ॥ ३५ ॥**

जब प्रश्न का प्रथमाक्षर त वर्ग का होता है तो पश्चिम दिशा में डेढ़ हाथ के नीचे बालक की हड्डी होती है। इसमें मालिक का रहना निश्चय ही अच्छा नहीं माना जाता है। गृह मालिक सदा प्रवास पर ही रहता है।

प प्रश्नाक्षरफलम्-

**वायव्यां दिशि पः प्रश्ने तुषाङ्गाराश्चतुः करे।**

---

१. 'याम्यायां दिशि च प्रश्ने कुर्यादा कटिसंस्थितम्। नरशल्यं गृहेशस्य मरणं चिररोगता॥' मिति पाठांतरम्, ज्योतिर्निबंधे पृ. १६६, श्लो. २०।

२. 'नैर्ऋत्यांदिशि त प्रश्ने सार्द्ध हस्ताघस्तले। शुनोस्थिजायतेतच्चींडभानांजतयेन्मृतिम्॥' मिति प्रकाशित पाठे।

३. 'एप्रश्नेपश्चिमस्यांतुशिशोःशल्यंप्रजायते। सार्द्धहस्तेप्रवासायसदनस्वामिनःपुनः॥' तत्रैव।

Scanned with CamScanner

**कुर्वीति मित्रनाशं च दुःस्वप्नदर्शनम् तथा[१] ॥ ३६ ॥**

यदि प्रश्न काल में प्रथमाक्षर प हो तो वायव्यकोण में चार हाथ पर भू अङ्गारक या कोयला होता है। इससे मित्र का नाश होता है व बुरे स्वप्न दिखाई देते

य प्रश्नाक्षरफलम्-

**उदीच्यां दिशि यः प्रश्ने विप्र शल्यं कटेरधः।**
**तच्छिद्रं निर्धनत्वाय कुबेर सदृशस्य हि[२] ॥ ३७ ॥**

य वर्ग से यदि प्रश्न आरंभ होता हो तो उत्तर दिशा में कमर से नीचे तक गर्त ब्राह्मण की हड्डी होती है और ऐसे भवन में रहने वाला यदि कुबेर के समान भी हो वह निर्धन हो जाता है।

श प्रश्नाक्षरफलम्-

**ऐशान्यां दिशि शः प्रश्ने गोशल्यं सार्द्धहस्ततः।**
**तद्गोधनानां नाशाय जायते गृहमेधिनाम्[३] ॥ ३८ ॥**

यदि प्रश्नाक्षर श हो तो ईशानकोण में डेढ़ हाथ के नीचे गाय का शल्य होता है इसमें भवनपति के गोधन का विनाश जानना चाहिए।

ह-ष-य प्रश्नाक्षरफलम्-

**हषया( हपया ? ) मध्यमे कोष्ठे वक्षोमात्रे भवेदधः।**
**नृकपालमथो भस्म लौहं तत्कुलनाशकृत्[४] ॥ ३९ ॥**

इसी प्रकार यदि ह, ष, और य मध्यम कोष्ठक में हो तो वक्ष तुल्य भूमि के नीचे मानव का कपाल, राख और लोहा होता है। यह स्वामी के कुल का विनाशक जानना चाहिए। पाठांतर के अनुसार प पश्चिम और य वर्ग वायव्य में कहा गया है और इन दोनों अक्षर से मध्यभाग में भी शल्य समझना चाहिए।

---

१. 'वायव्यां दिशिह प्रश्नेतुषांगाराश्चतुःकरे।
कुर्वीतिमित्रनाशं ते दुःखस्वप्नस्यदर्शनात् ॥' मिति प्रकाशित पाठे।

२. 'उदीच्यांदिशिशप्रश्नेनिमिशल्यंकटेरधः।
तद्गृहं निर्धनायत्वं कुबेरसदृशो यदि ॥' मिति पाठांतरम्।

३. 'इशान्यादिशिप्रश्नेगोःशल्यं सार्द्धहस्ततः।
तद्गोधनस्यनाशाय जायतेगृहमेधिनः ॥' मिति प्रकाशित पाठे।

४. 'मध्यकोष्टेचयप्रश्नेवक्षोमात्रेभवेदधः।
केशाःकपालंमर्त्यस्यभस्मलोहंचमृत्यवे ॥' तत्रैव।



**शल्य ज्ञान चक्र**

| श्राक्षर | अ | क | च | ट | त | प | य | श | ह,प,य |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| थ | ३/२ | २ | कटि | ३/२ | ३/२ | ४ | कटि | ३/२ | वक्ष |
| माण | हाथ | हाथ | मात्र | हाथ | हाथ | हाथ | प्रमाण | हाथ | स्थल |
| ल्य ाति | नर शल्य | खर शल्य | नर शल्य | श्वान शल्य | शिशु शल्य | तुष कोयला | विप्र शल्य | गो शल्य | नृकपाल भस्म लोहा |
| ल | मृत्यु कारक | राज दंड भय | स्वामी की मृत्यु | बाल मृत्यु | उद्वास | मित्र नाश दुःस्वप्न | निर्धनता | गोधन नाश | कुल नाश |
| दिशा | पूर्व | आग्नेय | दक्षिण | नैर्ऋत्य | पश्चिम | वायव्य | उत्तर | ईशान | मध्य |

थ शल्यज्ञानमुक्तावश्यकतामाह प्रतिष्ठासारसमुच्चे-

**जानुमात्रं खनेद् भूमिमथवा पुरुषोन्मिताम्**
**अधः पुरुषमात्रात्तु न( ? ग ) शल्यं दोषदं गृहे।**
**जलान्तिकं स्थितं शल्यं प्रासादे दोषदं( दोषं ? ) नृणाम्**
**तस्मात्प्रासादिकीं भूमि खनेद्यावज्जलान्तिकम् ॥ ४० ॥**

शल्य के सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि जिस भूमि पर गृह बनाना हो, वहाँ पर यदि एक पुरुष नीचे शल्य हो तो कोई दोष नहीं होता है किंतु यदि प्रासाद- राजमहल अथवा देवालय बनाना हो तो वहां पर भूमि को तब तक खोदा जाना चाहिए, जब तक कि पानी नहीं आ जाए।

विश्वकर्मा का मत है कि शल्य निकालने के लिए जलपर्यंत, पत्थर पर्यंत या पुरुष प्रमाण या १२० अङ्गुल पर्यंत भूमि को खोदना चाहिए। इसके बाद ही देवालय, गृहादि का निर्माण किया जाना चाहिए- *जलान्तं प्रस्तरान्तं वा पुरुषान्तमयापि वा। क्षेत्रं संशोध्य चोद्धृत्य शल्यं सदनमारभेत् ॥ (पृष्ठ १९२)*

*शल्य के विषय में प्रश्न की एक अन्य विधि मुनि गर्ग ने कही है जिसे भट्टोत्पल ने बृहत्संहिता की विवृत्ति में उद्धृत किया है। इसके अनुसार प्रश्नकाल में गृहपति किस अङ्ग में बैठा है, किस अङ्ग का स्पर्श करता है अथवा क्या शुभाशुभ कहता है, इन बातों पर विचार करते हुए स्थपति को शल्याशल्य का कथन करना चाहिए। शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग के शब्द, दधि, अक्षत, पुष्प, फल आदि का दर्शन होने पर स्पर्श किए हुए अङ्ग*

Scanned with CamScanner

के समान ही शल्य के विषय में कथन करना चाहिए। पृथ्वी खोदने के काल में जो स्फुरन करने लगे, उतने ही नीचे शल्य जानना चाहिए। प्रश्नकाल में गज, अश्व, गौ आदि जो जीव बोल उठे, उसी का वहाँ पर शल्य बताया जाना चाहिए- प्रश्न *गृहपतिः कस्मिन्नङ्गे समास्थितः। किमङ्गं संस्पृशेद्वापि व्याहरेद्वा शुभाशुभम्॥ वि स्थपतिः पूर्वं पश्चाच्छल्यं विचारयेत्। शङ्खभेरीमृदङ्गानां पटहानां च निःस्वनाः॥ दध्य पुष्पानां फलानां दर्शनानि च। स्पृष्टाङ्गसदृशं शल्यं तस्य स्थाने विनिर्दिशेत्॥ निखने तत्र तदङ्गं ब्रुडते तथा। गृहनाथस्य तत्राधः शल्यं निःसंशयं वदेत्॥ प्रश्नकाले गजो तुरगो गर्दभोऽपि वा। यः प्राणी व्याहरेत्तत्र तद्भव शल्यमादिशेत्। प्रमाणं तस्य व पूर्वोक्तविधिना ततः॥ (५३, १०७ पर उद्धृत)*

अथ संक्रान्त्यानुसारे खातविधि-

**आग्नेय्या खननं कुर्यात् मीनादि त्रितयरवौ।**
**मिथुनादि त्रयभानौ नैर्ऋत्यां खननं शुभम्॥ ४१॥**
**कन्यादि त्रितये चैवं वायव्या संखनेद् बुधः।**
**चापादित्रितये भानाविशान्यां खननं स्मृतम्॥ ४२॥**

मीन से तीन राशि अर्थात् मीन, मेष और वृषभ राशि में जब सूर्य हो तब आ कोण में खात करना चाहिए। इस स्थिति में नाग का मुख पश्चिम दिशा में होता मिथुन से तीन राशि अर्थात् मिथुन, कर्क और सिंह राशिस्थ सूर्य के होने पर नैर्ऋत्यको में खातकर्म करना शुभ होता है। कन्यादि तीन राशियों अर्थात् कन्या, तुला और वृश्चि राशि पर सूर्य हो तब बुद्धिमानों को वायव्यकोण में खात किया जाना चाहिए। इ प्रकारं धनु, मकर और कुंभ में सूर्य के होने पर ईशानकोण में खातकर्म किया जा चाहिए। खात कर्म में नाग की कुक्षी का त्याग किया जाना चाहिए।

**स्पष्टार्थ चक्र**

| क्रम | दिशा | राशि | मास |
|---|---|---|---|
| १. | पूर्व | कन्या, तुला, वृश्चिक | भाद्र, आश्विन, कार्तिक |
| २. | दक्षिण | धनु, मकर, कुंभ | आश्विन, पौष, माघ |
| ३. | पश्चिम | मीन, मेष, वृषभ | फाल्गुन, चैत्र वैशाख |
| ४. | उत्तर | मिथुन, कर्क, सिंह | ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण |

शिलान्यासदिशाज्ञानम्-

**दक्षिणकोणे पूर्वविभागे पूजनपूर्वं शिला समर्प्या।**



**स्थाप्या शेषशिला दक्षिणतः स्तम्भाः समर्प्या विधानेन॥ ४३॥***

दक्षिण तथा पूर्व के मध्य भाग में अर्थात अग्निकोण से वर्गाकार (समचोरस) ला का पूजन कर उसकी स्थापना करनी चाहिए। इसी तरह पूर्वादि दिशाओं के क्रम अन्य शिलाओं तथा स्तंभों की स्थापना करनी चाहिए।

व भित्तिमूलस्थापनप्रमाणम्-

**भित्तेमूलं स्थापनीयं जलान्ते पाषाणे वा हेमरत्नैः सगर्भं।**
**शीर्षे गुर्वी लेपहीनाधिका वा सन्धिश्रेणी पादहीनार्थहान्यै॥ ४४॥**

दीवार के लिए नींव जमीन में पानी आने तक या कठोर पत्थर आने तक दनी चाहिए, नींव भरते समय शिला को पंचरत्न के साथ स्थापित करना चाहिए तथा बड़े पत्थर से ढक देना चाहिए, उसके बाद दीवार का अगला चरण शुरू करना हिए। नींव से दीवार की जो चौड़ाई रखी गई हो, वह अंत तक रखना चाहिए, अर्थात् व तथा दीवार में जोड़ या खुली जगह नहीं हो और उसे सीधी बनानी चाहिए।

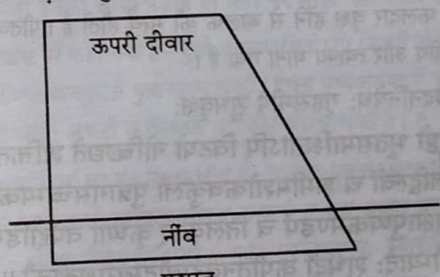


पञ्चरत्न

पञ्चसु कर्मसु वास्तुपुरुषपूजनम्-

**भवनपुरसुराणां सूत्रणे पूर्वमुक्तः**
**कथित इह पृथिव्याः शोधने च द्वितीयः।**

---

* राजवल्लभे कालिकाता पाठे इत्यननंतर क्षेपकः
ब्रह्मशंभुर्यथा-सूत्रं भित्तिशिलान्यासं स्तंभस्यारोपणं तथा।
पूर्वं दक्षिणयोर्मध्ये कुर्यादित्याह काश्यपः॥ १॥
नारदवाक्ये- नभस्यांदिषु मासेषु त्रिषु यथाक्रमम्।
पूर्वादिदिक्शिरो वामपार्श्वशायां प्रदक्षिणम्॥ २॥
वास्तुशास्त्रेप्युक्तम्- वास्तोः शिरसि पुछे च वामकुक्षौ च पृष्ठतः।
आयुः कामः खनेन्नेव दक्षकुक्षौ खनि शुभा॥ ३॥

**तदनु मुखनिवेशे स्तंभसंरोपणे स्याद्**
**भवनवसनकाले पञ्चधा वास्तुयज्ञः ॥ ४५ ॥**

गृह, नगर और मंदिर बनाने से पूर्व भूमि की चारों दिशाओं में खूंटियां गा विधिपूर्वक वास्तु पूजन करना चाहिए। पहले भूमिशोधन करने के बाद भी स्थापना के समय वास्तु पूजन अनिवार्य है। द्वार स्थापना, स्तंभ खड़े करने तथा या निवास शुरू करने के समय भी वास्तु पूजन करने को कहा गया है।

तत्फलानि-

**सदुग्धवृक्षा द्रविणस्य नाशं कुर्वन्ति**
**ते कण्टकिनोऽरिभीतिम्।**
**प्रजाविनाशं फलिनः समीपे**
**गृहस्य वर्ज्याः कलधौतपुष्पाः ॥ ४६ ॥**

गृह के सामने दूध वाले वृक्ष होने से धन का नाश, कांटेदार वृक्ष होने शत्रुभय और फलदार वृक्ष होने से बालक की मृत्यु होती है। पीतवर्ण के फूल वा वृक्ष भी निंदनीय और त्याज्य माना गया है।

वृक्षविशेषच्छेदननिषेधः गृहसमीपे शुभवृक्षः

**दुष्टो भूतसमाश्रितोऽपि विटपो नोच्छिद्यते शक्तितः**
**स्तद्बिल्वीं च शमीमशोकबकुलौ पुन्नागसच्चम्पकौ।**
**द्राक्षापुष्पकमण्डपं च तिलकान् कृष्णां वपेद्दाडिमीं**
**सौम्यादेः शुभदौ कपीतनवटावौदुम्बराश्वत्थकौ ॥ ४७ ॥**

दुष्ट तथा भूतहे वृक्षों को कभी नहीं काटना चाहिए। इसी तरह बिल खेजड़ा, आशापालव, मौलेसरी, पुन्नाग व चंपा को भी काटना वर्जित है। घर के साम द्राक्ष, पुष्पदार बेल, चंदन, पीपली, दाड़िम आदि का रोपण अच्छा माना गया है। इस तरह आवास के उत्तर में कैथ, पूर्व में बड़ (बरगद), दक्षिण में उदुम्बर तथा पश्चि दिशा में पीपल का रोपण श्रेष्ठ माना गया है।

**स्पष्टार्थ चक्र**

| वृक्ष प्रजाति | शुभ दिशा | वृक्ष प्रजाति | शुभ दिशा |
|---|---|---|---|
| कपित्थ या कैथा | उत्तर | गूलर या उदुंबर | दक्षिण |
| पीपल या अश्वत्थ | पश्चिम | वट या न्यग्रोध | पूर्व |



वृक्षच्छायादि निर्णयः वास्तुमण्डने-

**खर्जूर-दाडिमी-रम्भा-केलि-बदरी-बीजपूरकाः।**
**केतकीचेक्षवारूढा स्वयं गेहेन सौख्यदाः ॥ ४८ ॥**

खर्जूर, दाड़िम अथवा अनार, रम्भा, केल, बेर, बीजपूरक, केतकी आदि के पेड़ हों अथवा स्वयं लगाएं तो भी गृह में सुखदायक होते हैं।

*मण्डन ने राजवल्लभ. में भी कहा है- शस्ते चम्पकपाटले च कदली जाती तथा केतकी। (१, २८)*

अन्यदप्याह-

**अश्वत्थोदुम्बर वट्प्लक्षाम्रकार्मुकादिकान्।**
**वर्जयेद् गृहमाश्रित्य हर्म्य वृद्धि विघातकान्॥ ४९॥**

पीपल, उदुम्बर या गूलर, वट, प्लक्ष, आम्र, खेरादि को लगाने से अथवा इनके आश्रित गृह, जहां इनकी छाया पड़ती हो वहां पर वृद्धि नहीं होती है।

*राजवल्लभ. में कहा गया है- दुष्टो भूतसमाश्रितोऽपि विटपी नो छिद्यते शक्तितस्तद् बिल्वीं च शमीमशोकबकुलौ पुन्नागसचम्पकौ। द्राक्षा पुष्पकमण्डपं च तिलकान् कृष्णां वपेद्दाडिमीं सौम्यादेः शुभदौ कपित्थक वटावौदुम्बराश्वत्थकौ॥ (१, ३०)*

*यहाँ महर्षि गर्ग का मत विचारणीय है- वर्जयेत् पूर्वतोऽश्वत्थं प्लक्षं दक्षिणतस्तथा। न्यग्रोधं पश्चिमे भागे उत्तरे चाप्युदुम्बरम्॥ अश्वत्थे तु भयं ब्रूयात् प्लक्षे ब्रूयात्पराभवम्। न्यग्रोधे राजतः पीडा नेत्रामयमुदुम्बरे॥ वटः पुरस्ताद्धन्यः स्याद्दक्षिणे चाप्युदुम्बरम्। अश्वत्थः पश्चिमे भागे प्लक्षस्तूत्तरतो भवेत्॥ (सविवृतिबृहत्संहिता (५२, ८३)*

अन्यदप्याह-

**करवीर-मुनिद्राक्षा-जाती-तगर-कुब्जिकाः।**
**अन्यदेवद्रुमास्तेषां न कुर्यादाश्रितं गृहं ॥ ५० ॥**

करवीर या कनेर, अगस्त अथवा अगथिया, द्राक्षा, चमेली, तगर और अन्य देवद्रुमों की छाया जहां पड़ती हों, वहां पर गृह को नहीं बनाना चाहिए।

*देवद्रुमों की छाया से आशय को मण्डन ने राजवल्लभ. में स्पष्ट किया है दिन का एक प्रहर बीत जाने के पश्चात् किसी वृक्ष या देवालय की गृह पर छाया शुभ नहीं है- यामादूर्द्धमशेषवृक्षसुरजा छाया न शस्ता गृहे। (१, २८)*

Scanned with CamScanner

अन्यदप्याह-

**बदरी-कदली चैव इक्षुदंडेश-दाडिमी।**
**यत्र गृहं प्रोहंति तद्( यद्? ) गृहं न प्रोहंति[१] ॥ ५१ ॥**

बेर, केला, गन्ना और दाडिम का जिस गृह में रोपण होता है, वहाँ पर गृहप के वंश का वर्द्धन नहीं होता है।

अन्यदप्याह-

**द्राक्षा-मुनि-करवीर-र्जाती-तगर-कुब्जिका।**
**अन्येषां देववृक्षाणां न कुर्याद् गृहवासास्तुः ॥ ५२ ॥**

द्राक्षा या दाख, अगस्त, करवीर या कनेर, जाती या चमेली, तगर, जाई-कुब्जिका जैसे ही अन्य देव वृक्षों को गृहवास्तु में नहीं लगाना चाहिए, इनके काष्ट को भी गृह कार्य के लिए उपयोग नहीं करना चाहिए। ये निषिद्धवृक्ष हैं।

*इस सम्बन्ध में अन्य विचार भी उल्लेखनीय है। वास्तु और अन्यान्य शास्त्रों में दिशानुसार वृक्षों के आरोपण से भी फलाफल को दर्शाया गया है। अश्वत्थ के वृक्ष को गृह के पूर्व में नहीं लगाएं। प्लक्ष या पाकड़ को दक्षिण, न्यग्रोध या वट को पश्चिम एवं उदुम्बर को भवन के उत्तर में रोपना निषिद्ध है- वर्जयेत्पूर्व्वतोश्वत्थं प्लक्षं दक्षिणतो गृहात्। पश्चिमे चैव न्यग्रोधं तथोदुम्बरमुत्तरे॥ (वृक्षायुर्वेद २६) मतांतर यह भी है- प्लक्षोत्तरे प्रशस्त वटः पूर्वे च शोभनः। उदुम्बरस्तथा याम्ये पिप्पलो वारुणे तथा॥*

*अपने आवास पर कभी किसी भी वृक्ष की छाया नहीं पड़नी चाहिए। अपने भवन के द्वार के आगे स्वर्ण आभा वाले या पीले फूलों वाले वृक्षों का रोपण निषिद्ध होता है- सर्व्वेषां वृक्षजातीनां छाया वर्ज्या गृहे सदा। अपि सौवर्णिकं वृक्षं गृहद्वारे न रोपयेत्॥ (वृक्षायुर्वेद २८)*

---

१. पाठांतरे समराङ्गणसूत्रधारे-
बदरी कदली चैव दाडिमी बीजपूरिका।
प्ररोहन्ति गृहे यत्र तद्गृहं न प्ररोहति॥ (गृहदोषनिरूपणाध्याय १३१)
वृक्षायुर्वेदोक्ति-
बदरीकदली चैव दाडिमी बीजपूरकम्।
प्ररोहति गृहे यस्य तद्गृहं न प्ररोहति॥ (२९)
तथा च बृहद्वास्तुमालायां-
अश्वत्थं च कदम्बं च कदली बीजपूरकम्।
गृहे यस्य प्ररोहन्ति स गृही न प्ररोहति॥ (वा. रो. वि. २१)



*व्यक्ति को अपने आवासीय परिसर में एरण्ड (पलाश), कचनार, अश्वत्थ, श्लेष्मान्तक या लिसोड़ा, अर्जुन, करञ्ज आदि के पेड़ों को नहीं लगाना चाहिए। ये सुखद नहीं होते- एरण्डो (पलाशाः?) काञ्चनारश्चत्था श्लेषमांतकार्जुनाः। करञ्जश्चेत्यमी गृहपा न रोप्याः सुखिनो गृहे॥ (वही ३०)*

*गृह निर्माणादि के निमित्त काँटों वाले और दूध वाले वृक्षों का काष्ठ का प्रयोग नहीं करना चाहिए। काँटेदार वृक्षों से अर्थनाश होता है और फलवाले वृक्षों के काष्ठ के प्रयोग से प्रजाक्षय होता है। आसन्नाः कण्टकिनो रिपुभयदाः क्षीरिणोऽर्थनाशाय। फलिनः प्रजा क्षयकरा दारूण्यपि वर्जयेदेषाम्॥ (वही ३१)*

*नीली व हरिद्रा के द्रुमों के गृह में रोपण से पुत्र, धनादि का क्षय होता है। यदि स्वयंमेव भी लग जाते हों तो भी हानिकारक होते हैं, ऐसा महापुरुषों का मत है- नीलीं हरिद्रां च नरः सदोप्त्वा पुत्रधनैश्च क्षयमभ्युपेयात्। एतास्तु सर्व्वाः स्वयमेव जाताश्छिन्द्याहषीणां वचनाद्विधिज्ञः॥ (वही ३२)*

*सविवृत्तिबृहत्संहिता में चैत्यवृक्ष का परिणाम बृहस्पति एवं पुराण मत से दिया गया है- चैत्यवृक्षेषु भूतेभ्यः कृच्छावासः पुरा भयम्। अरतिस्त्वभिवर्धेत निर्विष्टैः कण्टकिद्रुमैः॥ मन्दरस्य गिरः शृङ्गे महावृक्षः स केतुराट्। आलम्बशाखाशिखरः कदम्बश्चैत्यपादपः॥ (५२, ८८)*

इति श्री वास्तुशास्त्रे शिल्पदीपके मिश्रकलक्षणम् नाम प्रथमप्रकरणं॥ १ ॥



Scanned with CamScanner

# द्वितीय प्रकरणम्

## आयादिलक्षणम्

अत्रैव पिण्डानयनं कृत्वाऽऽयाद्यानयनं कार्यम्। तत्रादौ तदुपयोगित्वम्-

**आयर्क्षं व्ययस्तारा अंशकानि क्रमेण तु।**
**धामस्य दीर्घता व्यासे गुणिते चाष्टभाजिते[१] ॥ १ ॥**
**ध्वजाद्याश्चैव शेषं वै लभते नात्र संशयः।**

आय, नक्षत्र, व्यय, तारा, अंशक- इनको गृह निर्माता को देखकर ही भव
मन्दिर का निर्माणकार्य आरंभ करना चाहिए। जिस स्थान पर निर्माणकार्य करना
उस भूमि की लम्बाई और चौड़ाई को गुणाकर आठ से भाजित करें, जो शेष रहे
ध्वजादि आय जानना चाहिए।

*रत्नमाला में श्रीपति का कथन है कि आय, व्यय, नक्षत्र, अंश, चंद्रमा, तार बल को शास्त्रों के अनुसार देखें और आयु, धन, आरोग्यता और यशादि की वृद्धि लिए गृहस्वामी को आवास निर्माण करवाना चाहिए- आयव्ययर्क्षांशकचंद्रताराबल शास्त्रादवलोक्य सम्यक्। आयुर्धनाऽऽरोग्ययशोभिवृद्ध्यै गृहं गृहस्थो हि निधापये (ज्योतिषरत्नमाला १७, १)*

अथायनामानि-

**ध्वजो धूम्रस्तथा सिंहः श्वानो-वृषो-खरो-गज ॥ २ ॥**
**ध्वाङ्क्षश्चैव समुदिष्टं प्राच्यादिषु प्रदक्षिणाः।**
**अन्योन्याभिमुखास्ते च क्रमछन्दानुसारतः ॥ ३ ॥**

उक्त विधि से लब्ध आयों के नाम हैं १. ध्वज २. धूम्र ३. सिंह ४. श्वान ५. वृ
६. खर ७. गज और ८. ध्वांक्ष , ध्वादि आय को पूर्वादि सृष्टि प्रदक्षिणाक्रम के अनुस

---

१. 'सगुण्यं दिर्घव्यासंच अष्टभिभागमाहरेत्' मिति प्रकाशित पाठे।



निर्माणादि में देना चाहिए। ये सभी आय स्थित्यानुसार परस्पर आमने-सामने ही
रख किए छंदानुसार रहते हैं।

**आय नाम-दिशादि स्पष्टार्थचक्र**

| क्रम | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नाम | ध्वज | धूम्र | सिंह | श्वान | वृष | खर | गज | ध्वांक्ष |
| दिशा | पूर्व | आग्नेय | दक्षिण | नैर्ऋत्य | पश्चिम | वायव्य | उत्तर | ईशान |

वर्णानुसाराय प्रदातव्यस्थानानि-

**ध्वजो गजो वृषो सिंहः शस्यते सुरवेश्मनि।**
**अधमानां खरो ध्वाङ्क्षो धूम्रः श्वानः सुखावहः ॥ ४ ॥**

ध्वजाय, गजाय, वृषाय और सिंहाय को देवालयों के निर्माण में देना शुभ माना जाता है। अधम वर्ण के लोगों के आवास में खराय, ध्वांक्ष , धूम्र तथा श्वानाय को सुखद माना गया है।

**कल्याणं कुरुते सिंहो नृपाणाञ्च विशेषतः।**
**विप्रस्य च ध्वजो देयो वृषो वैश्यमुदाहृतः ॥ ५ ॥**
**शूद्रस्य वै गजः प्रोक्तं सर्वकामफलप्रदाः।**

राजाओं और क्षत्रियों के गृहों के लिए सिंह आय का प्रयोग करना चाहिए। ब्राह्मणों के आवासों में ध्वजाय, वैश्यों के लिए वृषाय और शूद्र के गृहों में गजाय ही सर्व कामनाओं की सिद्धि करने वाला है।

अथायफलाफलम्-

**ध्वजे चैवार्थलाभश्च संतापो धूम्र एव च ॥ ६ ॥**
**सिंहे च विपुलान् भोगान् कलहः श्वाने सदा भवेत्।**
**धनधान्यं वृषेश्चैव स्त्रीमरणं तु रासभे ॥ ७ ॥**
**गजे भद्राणि पश्यंति ध्वाङ्क्षे च मरणं ध्रुवं।**
**स्व स्वस्थाने स्थिताः सर्वे सर्वदा शुभकारकाः ॥ ८ ॥**

ध्वज आय धन प्रदाता है। धूम्र-आय संताप दायक, सिंहाय अगाध भोगदायक, श्वानाय कलहकारी है। वृष आय धन की धान्य वृद्धिकारक है। खराय से स्त्री की मृत्यु होती है, गजाय सबके लिए कल्याणकारी है और ध्वांक्षाय मृत्युकारक है। ये आय स्वस्थान पर भी स्थित होकर समस्त शुभों को करने वाले हैं, अन्य के स्थान पर नहीं।

Scanned with CamScanner

ध्वजाय स्थानानि-

**प्रासादे प्रतिमालिङ्गे जगती( भ्रमयंत्रे ? )-पीठ-मंडपे।**
**वेदीकुंडे सुचि चैव पताका-छत्र-चामरे॥ ९॥**
**वापी-कूप-तडागानां कुण्डानां च जलाश्रये।**
**ध्वजोच्छुभश्च संस्थाने ध्वजं तत्र प्रदापयेत्॥ १०॥**
**आसने देवपीठेषु वस्त्रालङ्कार-भूषणे।**
**केयूर-मुकुटादौ च निवेशयेद् ध्वजः शुभम्॥ ११॥**

देवालय, प्रतिमा, शिवलिङ्ग, जगती, प्रासाद की पीठ, मण्डप, यज्ञकुण्ड, ध्व छत्र, चामर, बावड़ी, कुआं, तालाब, कुण्डादि जलाशय, ध्वज दंड, ध्वज-पत सिंहासन, देव-पीठिका, वस्त्र-आभूषण, कुण्डल, मुकुट आदि के लिए ध्वज आय श्रेष्ठ होता है।

धूम्रायस्थानानि-

**अग्निकर्मसु सर्वेषु होमशालामहानसे।**
**धूम्रोऽग्निकुंडसंस्थाने होमकर्मगृहेऽपि च[१]॥ १२॥**

सभी अग्नि कर्म के स्थानों में, यज्ञशाला, रसोई, अग्निकुण्ड और होम करने स्थानों के लिए धूम्राय देना श्रेष्ठ होता है।

सिंहाय स्थानानि-

**आयुधेषु समस्तेषु नृपाणां भवनेषु च।**
**नृपासने सिंहद्वारे सिंह तत्र निवेशयेत्[२]॥ १३॥**

सभी प्रकार के शस्त्रों के लिए, शस्त्रशाला या आयुधागार, सिंहासन, नगर प्रासाद के सिंहद्वार के लिए सिंहाय देना श्रेष्ठ है।

श्वानाय स्थानानि-

**श्वानो म्लेच्छगृहे प्रोक्तो वेश्यागारे नटस्य च।**
**नृत्यकार्येषु सर्वेषु श्वानः श्वानोपजीविनाम्[३]॥ १४॥**

---

१. 'अग्नीकर्मेषुसर्वेषुहोमशालागृहेषुच॥ ११॥ धौमनां ग्रहेचैव धौमं तत्रप्रदापयेत्।' मिति प्रकाशि पाठे।

२. 'नृप सिंहासनश्चैव सिंह तत्र निवेशयेत्' तत्रैव। अन्यच्च- सिंहासने नृपस्थाने सिंह तत्र निवेशयेत्

३. 'श्वानंम्लेच्छायसंप्रोक्ता विष्टांगारेनटेषुच॥ १३॥ वेश्यागृहेषुसर्वेषु श्वानं श्वानोपजीवनं।' तत्रैव।



म्लेच्छ जाति के घरों के लिए, वेश्या और नटों, नृत्य-नाट्यादि कार्य के सभी थानों पर, जिसकी आजीविका श्वान पालन पर आधारित हो, ऐसे लोगों के गृहों के ए श्वानाय देना श्रेष्ठ है। (यह विचार संप्रति श्वान पालन करने वाले व्यक्तियों को भी रना चाहिए।)

षाय स्थानानि-

**वणिक्कर्मसु सर्वेषु भोज्यपात्रेषु मण्डपे।**
**वृषस्तुरङ्गशालायां गोशाला-गोकुलेषु च[१]॥ १५॥**

सभी प्रकार का वाणिज्य कर्म करने वाले व्यापारी स्थलों, भोजन के पात्रों को, जमंडप या भोजशाला, अश्वशाला, गौशाला, और ग्वालों के गृहों के लिए वृषाय देना ष्ठ है।

खराय स्थानानि-

**तंतुवितितादिस्वरे वादित्रे विविधे तथा।**
**कुलाल-रजकादीनां खरो गर्दभजीविनाम्[२]॥ १६॥**

तत्, वितत्, घन और सुषिर- इन चार प्रकार के वाद्यों, धोबी के गृह, जिसकी आजीविका गधे पर आधारित हो, ऐसे कुम्हार, ओड्र के आवासों के लिए खर आय दिया जाना श्रेष्ठ है।

गजाय स्थानानि-

**गजश्च गजशालाय सिंह यत्नेन् वर्जयेत्।**
**सिंहासने गजं देय यानस्याथ गृहेषु च[३]॥ १७॥**
**अन्योपस्करकर्मादौ कामागारे गृहे गजः।**

गजशाला के लिए गजाय दें, परन्तु सिंहाय कभी नहीं देनी चाहिए। सिंहासन, पालकी, रथ, गाड़ी आदि वाहनों और उनका काम करने वालों के गृहों के लिए, स्त्री क्रीड़ागृह तथा भोगविलास के भवन के लिए भी गजाय देनी चाहिए।

---

१. 'वणीजं सर्वकर्मेषु भोजनापात्रेषु मंडपे॥ १४॥ वृषानांतुरगागारे गोशाला गोकुलेषु च।' मिति प्रकाशित पाठे।

२. 'तंतुर्वितनुसारैश्च वाजीत्राणागृहेषुच॥ १५॥ कुलालरजकादीनां खरंगर्धभजिवीनाम्।' तत्रैव। अन्यच्च- तंतु वितनुसाराणां वादित्राणां गृहेषु च।

३. 'अन्यापरकर्माद्यं मदनागारेगृहेगजं॥ १६॥ गजंचगजशालायां सिंहयत्नेनवर्जयेत्। सिंहासनगजश्चैव जानुजंगादिषुद्भवः॥ १७॥' तत्रैव।

Scanned with CamScanner

ध्वाङ्क्षाय स्थानानि–

**मठेषु यंत्रशालासु जिनशालादिकेषु च ॥ १८ ॥**
**ध्वाङ्क्षश्चैव प्रदातव्यः शिल्पकर्मोपजीविनाम् ।**[1]

संन्यासियों के मठ, यंत्र निर्माणगृहों, उपाश्रयों, शिल्पादि कार्य करने (सिलावट, सोनी, लौहार, सुथार, चित्रकार) आदि के गृहों के लिए ध्वांक्षाय श्रे

**स्वके स्वके च स्थाने ते सर्वकल्याणकारकाः ॥ १९ ॥**
**स्नेहानुगाश्च मैत्राद्यास्तत्रार्थे हितकामदाः ।**[2]

इन आठों आयों को अपने-अपने स्थान पर देने से स्थान कल्याणकारी बन प्रतिकूल हानिकारक होते हैं, एक दूसरे से परस्पर स्नेह, मैत्री को देखकर इन आयों दिया जाना सार्थक एवं हितकारी होता है।

अथ परस्परदेयाय–

**वृषस्थाने गजं दद्यात् सिंहं वृषभ हस्तिनोः ॥ २० ॥**
**ध्वजः सर्वेषु दातव्यो वृषो नान्यत्र दीयते ।**[3]

वृष आय की जगह गजाय को दिया जा सकता है, वृषाय और गजाय की ज सिंह आय को दिया जा सकता है। ध्वजाय को किसी भी आय की जगह दिया सकता है, परन्तु वृषाय को किसी भी आय के स्थान पर कभी नहीं देना चाहिए।

आयज्ञानस्य रीत्यादीनां–

**रुद्र$_{११}$ भागायते क्षेत्रे कृते पञ्चांश$_{५}$ विस्तरे।**
**ऊर्ध्वपङ्क्तौ क्रमात्कोष्टेष्विन्द्र$_{१४}$ धिष्ण्य$_{२७}$ द्वि$_{२}$ भास्करान्$_{१२}$ ॥ २१ ॥**
**तिथ्य$_{१५}$ष्ट$_{८}$ वेद$_{४}$ रामेषु$_{३}$ राग$_{६}$ नन्दान्$_{९}$ समालिखन्।**
**तदधो मातृकान् वर्णानाद्यान्तांश्च क्रमालिखेत् ॥ २२ ॥**

आय के ज्ञान के लिए चक्र बनाया जाना चाहिए। ऊपर ११ और नीचे कोष्ठकों वाला एक चक्र बनाकर उसमें ऊपर क्रमशः १४, २७, २, १२, १५, ८, ४, ६ एवं ९ अङ्क लिखें। नीचे के कोष्ठकों में वर्ण मातृका को अ से क्ष तक क्रमानुसार लिखें।

---

१. 'मठेषुयंत्रशालेषु जैनशालादिसंभवे। ध्वांक्षीचैवमदातव्यं शिल्तिकर्मोपजिवीनं ॥ १८ ॥' मिति प्रकाशि पाठे

२. 'स्वके स्वके वै स्थानेषु सरये कल्याणकारयेत्। स्नेहानुंगाश्चमत्राद्या तत्रार्थे हितकामदा ॥ १९ ॥' तत्रैव

३. 'ध्वजं सर्वेषु दातव्यं वृषं नान्यत्र दियते ॥ २० ॥' तत्रैव



**ऋॠऌॡविसर्गान्त संयोगाक्षरं वर्जितान्।**
**नामाक्षरस्य संघातं वसुभिर्विभजेत्सुधीः ॥ २३ ॥**

किंतु मातृका में स्वीकार्य ऋ, ॠ, ल, लृ, ळ जैसे अनुस्वार, विसर्गान्त और योगाक्षरों को त्याग दिया जाना चाहिए। मनुष्य के नामाक्षर जितने हों, उतनी ही संख्या नाम के आद्य अक्षर को उक्त कोष्ठक में देखकर ऊपर जो अङ्क आए, उसके साथ णा करके उस गुणनफल को आठ से भाग करें।

**शेषमायो मनुष्यस्य ध्वजाद्यो देहगो भवेत्।**
**नक्षत्रं तारकांशौ च व्ययाद्यं चापि देहगम् ॥ २४ ॥**

इस प्रकार भाजन के बाद जो फल शेष रहे, उसे व्यक्ति के ध्वजादि आय जानने चाहिए। इसी प्रकार गृहकार्य के निमित्त बुद्धिजनों को नक्षत्र, व्यय, तारा, अंशकादि को भी जानना चाहिए।

अत्रैव भक्षकायज्ञानमाह–

**ध्वजादीनां चतुर्णां तु चत्वारो वृषभादयः।**
**भक्षका( के ? ) भवने वर्ज्या गृहस्वामिविभक्षकाः ॥ २५ ॥**

ध्वजादि चार आयों अर्थात् ध्वज, धूम्र, सिंह एवं श्वानाय को अनुक्रम से वृषभादि खर और ध्वांक्ष आयों की भक्ष जानना चाहिए। इस प्रकार यदि ये गृह के आयदार स्वामी का भक्षण करती है तो गृहपति का मरण समझना चाहिए।

स्फुटार्थ चक्र

| | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १४ | २७ | २ | १२ | १५ | ८ | ४ | ३ | ५ | ६ | ९ |
| अ | आ | इ | ई | उ | ऊ | ए | ऐ | ओ | औ | क |
| ख | ग | घ | ङ | च | छ | ज | झ | ञ | ट | ठ |
| ड | ढ | ण | त | थ | द | ध | न | प | फ | ब |
| भ | म | य | र | ल | व | श | ष | स | ह | क्ष |

अत्रैव आय स्वरूपमाह–

**ध्वजः पुरुषरूपश्च धूम्रो मार्जाररूपकः।**
**सिंहः सिंहस्वरूपश्च श्वानः श्वानस्वरूपकः ॥ २६ ॥**
**वृषो वृषभरूपाढ्यः खरो रासभरूपकः।**

**गजश्च गजरूपेण ध्वाङ्क्षः काकस्वरूपकः[1] ॥ २७॥**

अब ध्वजादि आयों के स्वरूप का वर्णन किया जा रहा है। ध्वज आ स्वरूप पुरुष जैसा, धूम्राय स्वरूप बिल्ली जैसा, सिंहाय का स्वरूप सिंह जैसा, आय का स्वरूप कुत्ते जैसा, वृषाय का स्वरूप बैल जैसा, खराय का स्वरूप गदहे गजाय का स्वरूप हाथी जैसा और ध्वांक्षाय का कौए जैसा मुख स्वरूप होता है

**सर्वेषां तु सिंहग्रीवाश्च प्रबलाश्च महोत्कटा।**
**महागणेश्वराः प्रोक्ता दिशाष्टो क्षेत्रपाधिप[2] ॥ २८ ॥**

उक्त आठों आयों की ग्रीवा सिंह की तरह होती है, वे प्रबल और महो स्वरूप वाले हैं, वे महागणेश्वर जैसे व आठों ही दिशाओं के अधिपति होते हैं।

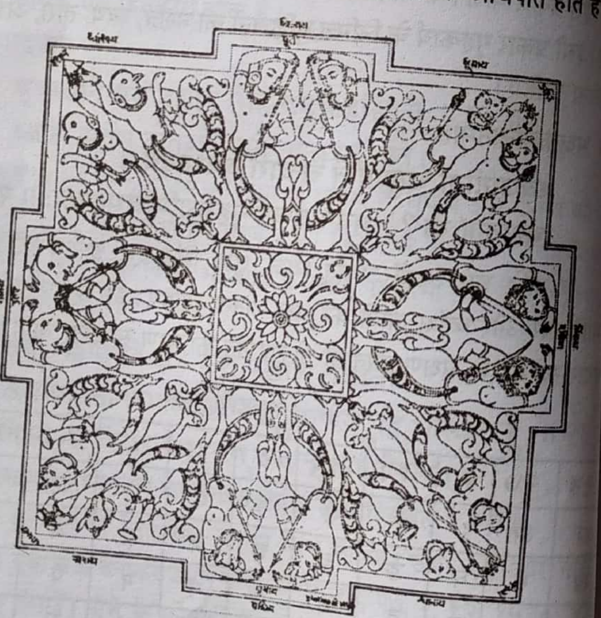

आयों के स्वरूप

१. 'ध्वजं पुरुषरूपेण धूम्र मांजाररूपक। सिंहे च सिंहरूपेण श्वानं च श्वानरूपकं ॥ २६ ॥ वृषं वृषभरूपेण खरं गर्दभरूपकं। गजाय मयंदरूपेण ध्वांक्ष वायसरूपकं ॥ २७ ॥' मिति प्रकाशित पा

२. 'सर्वेषु सिंहवर्गाद्या प्रबलाश्च महोकटा। महागणेश संप्रोक्ता दिशाष्टो क्षेत्रपोधिप' तत्रैव। दीपार्णवे महागणेश्वराः प्रोक्ताः क्षेत्रपाश्च दिशाष्टसु ॥



**सर्वेकुर्कुटरूपेण पुरुषकारे च पुष्कला।**
**हस्तभ्यां नाररूपाभ्यां पादाभ्यां विहगाकृति ॥ २९ ॥**

उन सभी का कटि से नीचे कुक्कुट जैसा रूप होता है, कटि से ऊपर पुरुषाकार होते हैं। उनके हाथ भी पुरुष जैसे ही होते हैं किंतु पाँव विहग या पक्षी तुल्य होते हैं।

*ज्ञानप्रकाशदीर्पाणव (१, ३७) एवं शिल्परत्नाकर (१,६२) का मत है कि वास्तुकर्म के सभी कार्य में उनका पूजन करने से अपने स्थान रहते हुए भी विघ्नों की शांति करने वाले सहायक सिद्ध होते हैं- वास्तुकर्मसु सर्वेषु आयादिक्पतयोऽष्ट हि( ? वाष्टावायादि संपदः)। पूजिताः पूजयंत्ये निर्विघ्नं च पदे स्थिताः॥*

केषां गृहे कीदृशो हस्तोऽपेक्षितः राजवल्लभे-

**मानं देवगृहादिभूपसदने शास्त्रोक्तहस्तेन तद्**
**गेहे कर्मकरेण नाथकरतः स्यात्त्रेण देयं गृहे।**
**आयो दण्डकराङ्गुलादिमपितो हस्ताङ्गुलेरंशतः**
**क्षेत्रस्याप्यनुमानतोऽपि नगरे दण्डेन मानं पुरे ॥ ३० ॥**

देवमंदिर और राजमहलों का मापन शास्त्रों में बताए अनुसार हस्त से करना चाहिए। जनसाधारण के गृह का मापन शिल्पी के हाथों से करनी चाहिए; लेकिन तृण, पत्तों या लकड़ियों से बनने वाले दीन-हीन के गृह का मापन गृहेश को ही अपने हाथों से करना चाहिए। भवन निर्माण की भूमि का दंड, हस्त, अङ्गुल या यवमानादि से क्षेत्रफल ज्ञात कर उसी प्रमाण में आय का आनयन या निकालना चाहिए, लेकिन इसके विपरीत नगर-कस्बों का माप दंड मान से करना चाहिए।

**आयः कल्प्यो हस्तमेयैः करैश्च**
**क्षेत्रे मात्रानिर्मिते मातृकाभिः।**
**मध्ये पर्यङ्कासने मन्दिरे च**
**देवागारे मण्डपे भित्ति बाह्ये ( वाद्ये ? ) ॥ ३० अ ॥**

हस्त या अङ्गुल से भूमि का मापन व क्षेत्रफल ज्ञात करने के बाद उसी मान के अनुरूप आय की कल्पना करने का कहा गया है। पर्यंक अथवा पलंग के बीच के भाग के बराबर की आय कल्पित की जानी चाहिए। इसी तरह घर के दोनों किनारों, मेवाल (एक प्रकार की लकड़ी, जो छत बनाने के काम आती है) तथा दीवारों के चारों ओर के मध्य के भाग के भाग से भी आय का आनयन करना चाहिए। इसके विपरीत, मंदिर

Scanned with CamScanner

के संदर्भ में यदि विचार हो तो दीवारों के बाहर चारों ओर का माप लेकर आय... जा सकती है।

अथ क्षेत्रफलानयनमाह-

**आयामं यदि क्षेत्रं तु विस्तारेण च गुणयेत्।**
**सप्तविंशत्या हृद्भागं शेषे स्यान्मूलनिश्चयः[१] ॥ ३१ ॥**

प्रासाद या घर के क्षेत्र की लम्बाई-चौड़ाई आमने-सामने गुणा करके क्षेत्रफल आए उसका सत्ताइस भाग करने से जो शेष बचे, उसे (क्षेत्र की) मूल... जानें।

मूल राश्यात् नक्षत्राङ्कानयन विधिः

**फले चाष्टगुणे तस्मिन् सप्तविंशतिभाजिते।**
**यच्छेषं लभते तत्र नक्षत्रं तद् [२]गृहस्य तु ॥ ३२ ॥**

क्षेत्रफल का आठ से गुणा करके सत्ताइस से भाग करने से जो शेष रहे उसे के अश्विन्यादि नक्षत्र का अंक जाने।

| गृहेश का नामाक्षर | ड ह | द च झ थ | न य | अ ल इ | म ट | भ ध फ ढ | ब व उ | प ठ ण | ख ज | क छ घ | र त | ... |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| राशि | कर्क 4 | मीन 12 | वृश्चि. 8 | मेष 1 | सिंह 5 | धन 9 | वृष 2 | कन्या 6 | मकर 10 | मिथु. 3 | तुला 7 | कुं... 11 |
| नक्षत्र | | | | कृति. 3 | उ.फा 12 | उ.षा. 21 | | | | | | |
| | अश्ले. 9 | रेव. 27 | ज्ये. 18 | भर. 2 | पू.फा. 11 | पू.षा. 20 | मृग 5 | चित्रा 1घ | धनि. 23 | पुन. 7 | विशा. 16 | पू... 25 |
| | पुष्य 8 | उ.भा 26 | अनु. 17 | अश्वि. 1 | म. 10 | मू. 19 | रोहि. 4 | हस्त 13 | श्रव. 22 | आ. 6 | स्वा. 15 | शत. 2घ |
| जाति | ब्राह्मण जाति | | | क्षत्रिय जाति | | | वैश्य जाति | | | शूद्र जाति | | |

१. 'आयामं यदि क्षेत्र च विस्तारे च गुणेशु च। सप्तविंशति हरेद्भागं शेषस्यात्फल निश्चय' मिति प्रकाशित पाठे।

२. 'गृहेषु च' मिति पाठान्तरम्। 'यतशेषं लभ्यते तत्र नक्षत्र तद्ग्रहस्य च' तत्रैव।



...थ गणनक्षत्रगणमैत्रीगुणदोषश्च-

**स्वगणे चोत्तमा प्रीतिर्मध्यमा देवमानुषे।**
**कलहो देवदैत्यानां मृत्युर्मानवराक्षसे ॥ ३३ ॥**

गृह और गृहस्वामी का यदि एक ही गण हो, तो उत्तम प्रीति बनी रहती है। ...गर एक का देवगण और दूसरे का मनुष्यगण हो तो मध्यम प्रीति जाननी चाहिए, ...न्तु यदि एक का मनुष्य गण और दूसरे का राक्षसगण हो तो वह मृत्युकारक कहा ...या है। इसी प्रकार यदि एक का देवगण और दूसरे का राक्षसगण होता है तो वह ...त्युकारक जानना चाहिए। गृह व गृहस्वामी के सन्दर्भ में यह मिलान शुभ होता है।

...थ नक्षत्रनामानि-

...वगणनक्षत्राणि-

**मृगाश्विनी रेवती च हस्तः स्वातिः पुनर्वसुः।**
**पुष्याऽनुराधा श्रवण-मिति देवगणाः स्मृताः[१] ॥ ३४ ॥**

मृगशिरा, अश्विनी, रेवती, हस्त, स्वाति, पुष्य, अनुराधा और श्रवण ये नक्षत्र ...देवगण जाने।

राक्षसगण नक्षत्राणि-

**कृत्तिका मूलमश्लेषा मघा चित्रा विशाखिका।**
**धनिष्ठा शततारा च ज्येष्ठा च राक्षसगणाः[२] ॥ ३५ ॥**

कृतिका, मूल, अश्लेषा, मघा, चित्रा, विशाखा, धनिष्ठा, शतभिषा और ज्येष्ठा- इन नौ नक्षत्रों को राक्षसगण जानना चाहिए।

मनुष्यगण नक्षत्राणि-

**भरणी त्रीणि पूर्वाणि ह्युत्तरात्रयमेव च।**
**आर्द्रा च रोहिणी चैव नवैते मानुषा गणाः ॥ ३६ ॥**

भरणी, पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, आर्द्रा और रोहिणी- इन नौ नक्षत्रों को मनुष्यगण जानना चाहिए।

१. 'मृगाश्विनी च खेत्या हस्त स्वाति पुनर्वषु, पुष्यनुराधा श्रवणं च नवैते देवतागुण' मिति प्रकाशितपाठे। द्वितीय पङ्क्तौ- श्रुतिः पुष्योऽनुराधा च नवानि देवतागणः मिति पाठांतरम्।

२. 'क्रतिका मूलाश्लेषा मघा चीत्रा विशाखयोः, धनीष्टा शतभीषाश्च जेष्टादि राक्षसगुण' मिति प्रकाशितपाठे। अन्यच्च-विशाखा मूलमश्लेषा मघा चित्रा च कृतिका, धनिष्ठा शततारा च ज्येष्ठा वै राक्षसो गणः।

Scanned with CamScanner

| क्रम | गण | नक्षत्र |
|---|---|---|
| १. | देवगण | पुनर्वसु, अश्विनी, पुष्य, मृगशीर्ष, श्रवण, रे[illegible] स्वाती, हस्त, अनुराधा |
| २. | मनुष्यगण | भरणी, रोहिणी, आर्द्रा, तीनों पूर्वा, तीनों उत्तरा |
| ३. | राक्षसगण | विशाखा, कृतिका, अश्लेषा, मघा, शतभिषा, चि[illegible] ज्येष्ठा, धनिष्ठा, मूल। |

मूलादिषु नवसु अधोमुखेषु वाप्यादिषुखातारंभं-

**मघा मूलं विशाखा च कृतिका भरणी तथा।**
**पूर्वात्रयं तथाऽश्लेषाऽधोमुखाः परिकीर्तिताः[१] ॥ ३७॥**

मूल, मघा, विशाखा, कृतिका, भरणी, पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभा[illegible] और अश्लेषा- इन नौ नक्षत्रों की अधोमुख संज्ञा है।

**भूकार्यमग्निकार्यं च युद्धं च विवरं क्षिपेत्( विविधं क्षयेत्?)।**
**एषु कूपतडागं च वापि-भूमि-गृहाणि च॥ ३८॥**
**द्यूतारम्भौ निधिः स्थाप्यो निधानखननं तथा।**
**गणितं ज्योतिषारम्भः खातं विलप्रवेशनम्[२] ॥ ३९॥**
**अधोमुखानि कार्याणि तानि सर्वाणि कारयेत्।**

इन अधोमुख नक्षत्रों में जमीन संबंधी कार्य, अग्नि संबंधी कार्य, युद्ध में ख[illegible] खोदना, कूप, बावड़ी, तालाब इत्यादि जलाशय खोदना, भूतल या सुरंग खोदना, जु[illegible] खेलना, द्रव्य छुपाना, धन या दफीना खोदना, गणित और ज्योतिषशास्त्राध्ययन [illegible] आरंभ, खात करना, गुफा या गुहागृह में प्रवेश करना आदि कार्य करना चाहिए।

ज्येष्ठादिषुनवसु तिर्यग्मुखेषु हयादि दमनं-

**ज्येष्ठाश्विनी पुनर्वसु-मृगशिरश्च रेवती॥ ४०॥**
**अनुराधा तथा स्वाति-र्हस्तश्चित्रा तिर्यङ्मुखाः।**

ज्येष्ठा, अश्विनी, पुनर्वसु, मृगशीर्ष, रेवती, अनुराधा, स्वाति, हस्त और चित्रा-

१. 'मघा मूलाविशाखा च क्रतिका भरणि तथा। पुर्वात्रयं तथाश्लेषा अधोमुखा प्रकिर्तिता' मिति प्रकाशितपाठे
२. 'भू कार्यमग्निकार्यं च युद्धं विविधं क्षयेत्, यज्ञकुण्ड तडागं च वापि भूमि गृहाणि च, दुतारं[illegible] निधिस्थाप्य निधानो खननं स्तथा, गणितं जोतिषारंभ खातं बिल प्रवेशनम्' तत्रैव।



[illegible] नौ नक्षत्र तिर्यक् मुख वाले कहे गए हैं।

**संधिं च वणिक्कार्याणि सर्वबीजानि वापयेत्॥ ४१॥**
**वाहनानि च यंत्राणि दमनं च विनिर्दिशेत्।**
**गजाश्वोष्ट्रजातीनां च महिषवृषाणां तथा॥ ४२॥**
**दमनं कृषिवाणिज्यं गमनं क्षौरकर्म च।**
**अरघट्टादियंत्राणि शकटवाहनानि च[१] ॥ ४३॥**
**तपश्चर्यादिकर्माणि तानि सर्वाणि कारयेत्।[२]**

इन तिर्यक् मुख नक्षत्रों में शत्रु के साथ मैत्री, संधि कर्म, वाणिज्यकर्म, सभी प्रजातियों के बीज का वपन, रोपाई, कृषिकर्म, हाथी, घोड़ा, ऊंट, महिष और बैल आदि जानवरों का पालन, दमन, खेती, व्यापार, परदेश गमन, क्षौरकर्म, पानी के रहट या फारसी-यंत्र बनाना या संचालन, शकट, छकड़ा या वाहन, तपश्चर्या इत्यादि कार्य करने चाहिए।

पुष्यादिषु नवसु ऊर्ध्वमुखेषु ऊर्ध्वकार्याणि-

**पुष्पार्द्राश्रवणं चैव उत्तरात्रयमेव च॥ ४४॥**
**शतभिषग् रोहिणी च धनिष्ठा चोर्ध्ववक्त्रगाः।**
**प्रासादं तोरणं कार्य कृषि चैव समाचरेत्॥ ४५॥**
**पट्टाभिषेकप्रारम्भः प्रासादे च ध्वजं न्यसेत्।**
**ऊर्ध्ववक्त्राणि कार्याणि तानि सर्वाणि कारयेत्[३] ॥ ४६॥**

पुष्य, आद्रा, श्रवण, उतराफाल्गुनी, उतराषाढ़ा, उतराभाद्रपद, शतभिषा, रोहिणी और धनिष्ठा- ये नौ नक्षत्र ऊर्ध्वमुख वाले हैं। प्रासाद निर्माण, तोरण बंध या चढ़ाना, खेती, राज्याभिषेक और पट्टाभिषेक करना, देवस्थान पर ध्वजारोहण आदि सभी ऊँचाई वाले कार्य इन ऊर्ध्वमुखवाले नक्षत्रों करने चाहिए।

१. 'जेष्ठाश्विनी खेत्यां मृगशिर पुनर्वषु, अनुराधा तथा स्वाति हस्त चित्रा तिर्यक्मूखा, नविनं वणिजं कार्यं सर्व वीजानि रोषयेत्, वाहनानि हि यंत्राणि दमनं च विनिर्दिशेत्, अश्व गजं च उष्ट्रं च वृषभं महिषं खरं, दमनं क्रषि वाणिज्यं गमनं क्षौरकर्मणि, अन्हर्व चक्र यंत्राणि शकटानां च वाहनं' मिति प्रकाशितपाठे।
२. 'तिर्यक्मुखानि कार्याणि तानि सर्वाणि कारयेत्' इत्यमन्त्ये प्रकाशितपाठे विशेषः।
३. 'पुष्याद्रा श्रवणं चैव उत्रा त्रयमेव च, रोहिणी शतभिषा च धनिष्टा उर्द्धवकया, प्रासाद तोरणं कार्यं कृषि चैव समारभेत्, पट्टाभिषेकं रंभा प्रासादं च ध्वजं क्षयेत्, उर्द्धवक्राणि कार्याणि तानि सर्वाणि कारयेत्' तत्रैव।

Scanned with CamScanner

## स्पष्टार्थ चक्र

| क्रम | संज्ञा | नक्षत्र | कार्य |
|---|---|---|---|
| १. | अधोमुख | पूर्वात्रय, अश्लेषा, मघा, कृतिका, मूल, भरणी, विशाखा | भूमिखात, विधिरोपण, उग्र |
| २. | पार्श्वमुख | चित्रा, अश्विनी, अनुराधा, पुनर्वसु, स्वाती, ज्येष्ठा, मृगशिरा, रेवती, हस्त | वाहन, यंत्र, हलारोहण, पशुकृत्य |
| ३. | ऊर्ध्वमुख | पुष्य, उत्तरात्रय, आर्द्रा, श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, शतभिषा | गृहप्राकार, देवगृह, उच्चहर्म्य छत्र, राज्याभिषेक |

अथ राश्यानयन विधि:

**गृहक्षेत्रस्य यद्दक्षं पष्टिभिर्गुणितं तथा।**
**पञ्चत्रिंशच्छत$_{१३५}$ भक्तं शेषभुक्तिरजादय:[१] ॥ ४७ ॥**

गृह के क्षेत्र का जो नक्षत्र आया हो, उसके अंक को ६० से गुणा करें और गुणनफल आए, उसको एक सौ पैंतीस से भाग करें। इस प्रकार जो शेष रहे, उ वर्तमान मेषादि राशि जाने, जो लब्धि आएं, उसे गतराशि जाने।

नक्षत्रस्य राशय:

**अश्विन्यादित्रये मेष: सिंह: प्रोक्तो मघात्रये।**
**मूलादित्रये चापश्च शेषेषु नवराशय:[२] ॥ ४८ ॥**

अश्विन, भरणी और कृतिका- इन तीन नक्षत्रों की मेषराशि कही गई है। मघा, पूर्व फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी की सिंह राशि; मूल, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्रों की धनु राशि कही गई है। शेष जो नक्षत्र है, नौ राशि वाले हैं अर्थात् रोहिणी, मृगशिर वृषभ राशि के, आर्द्रा व पुनर्वसु मिथुन के, पुष्य और आश्लेषा कर्क राशि के,

---

१. 'गृह क्षेत्रेषु नक्षत्रं षष्टीभी गुणितं तथा, पंचत्रिंशत शते भागं शेशं भूमिमेषादय:' मिति प्रकाशितपाठे।
२. 'अश्विन्यादि त्रयं मेषे सिंहे प्रौक्तं मघात्रयं, मुलादि त्रतियं चापि शेषेषु नव राशिनाम्' तत्रैव।



स्त और चित्रा कन्या राशि के, स्वाती और विशाखा तुला राशि, अनुराधा और ज्येष्ठा श्चिक, उत्तरा भाद्रपद और रेवती मीन राशि के नक्षत्र कहे गए हैं।[१]

अथ चन्द्रदिशाविचारमाह-

**कृतिकादि सप्त सप्त पूर्वादिषु प्रदक्षिणे।**
**अष्टाविंशतिर्ऋक्षाणां$_{२८}$ तत्र चन्द्र उदाहृत:[२] ॥ ४९ ॥**

कृतिका आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा में, मघादि सात नक्षत्र दक्षिण दिशा में, अनुराधादि सात नक्षत्र (साभिजित्) पश्चिम दिशा में, और धनिष्ठादि सात नक्षत्र उत्तर दिशा में रखें और गृह का नक्षत्र जिस दिशा में हो, उसी दिशा में चन्द्रमा की स्थिति को जानना चाहिए।

अथ चन्द्रफलमाह-

**अग्रतो हरते ह्यायु: पृष्ठतो हरते धनम्।**
**वामदक्षिणयोश्चन्द्रो धनधान्यकर: स्मृत:[३] ॥ ५० ॥**

गृह के द्वार के सामने चन्द्रमा की स्थिति हो तो वह आयुष्य का विनाश करता है। पीछे चन्द्रमा हो तो धन का नाश करता है, परन्तु गृह की दाँ यें और बाँयें चन्द्रमा हो, तो धन-धान्य की वृद्धि करने वाला जानना चाहिए।

अन्यच्च-

**प्रासादे राजगेहे च चन्द्रं दद्यात् सदाग्रत:।**
**अन्येषां तु न दातव्यं श्रीमन्तादिगृहेषु च[४] ॥ ५१ ॥**

उक्त संदर्भ में यह भी ज्ञातव्य है कि देवप्रसाद और राजप्रसाद के लिए सन्मुख चन्द्रमा होना चाहिए, शेष श्रीमंत या सामंत आदि के गृह के लिए सन्मुख चन्द्रमा नहीं रखना चाहिए। व्यवहार में प्रासाद के अङ्गों के सन्मुख, दाँयें-बाँयें रखते हैं।

अथ राशिमैत्री इष्टाऽनिष्टभावमाह-

***सप्तमे चोत्तमा प्रीति षडष्टे मरणं ध्रुवम्।**

---

१. अत्रैव ज्ञानप्रकाशदीपार्णवे-
मेषादिश्च भवेद्राशिर्नक्षत्रमश्विन्यादिकम्। वास्तुकर्मसु सर्वेषु गृहवेधं विशोधयेत्॥ (१,५६)
२. 'क्रतिकादि सप्तसप्त पुर्वाद्या च प्रदक्षिणा। अष्टाविंशति मुक्ताना तत्र चंद्र मुनिहरेत्॥' मिति प्रकाशितपाठे।
३. 'अग्रेता हरते आयु पृष्टतो हरते धनं, वाम दक्षिणादिशश्चंद्र धनधान्यप्रद स्मृत:' तत्रैव।
४. 'प्रासादे राजवेश्मेतु चंद्रो दद्यातहि अग्रत:, अन्येषो न दातव्यं श्रीमतादि गृहेषु च' तत्रैव।

Scanned with CamScanner

**नवपञ्चमेऽतिक्लेशः पुष्टिर्दशचतुर्थके ॥ ५२ ॥**
**तृतीयैकादशे मैत्री द्वितीये द्वादशे रिपुः ।**
**एवं तु षड्विधं प्रोक्तं राशीनां च परस्परम्[१] ॥ ५३ ॥**

गृह की राशि से स्वामी की राशि तक गिनते समय सातवीं राशि आएँ तो उ प्रीति करवाती है, छठी या आठवीं आए तो गृहस्वामी की मृत्यु होती है, नवीं पञ्चमी राशि आए तो क्लश होता है। दशमी और चतुर्थ राशि आए तो पुष्टिकारक तीसरी और ग्यारहवीं राशि आए तो मित्रता होती है। इसी प्रकार दूसरी और बारह राशि आए तो शत्रुता कराने वाली जाननी चाहिए। राशियों में षडष्टक निषेध है, इस परस्पर शुद्धि देखकर ही गृह आदि का निर्माण करना चाहिए।

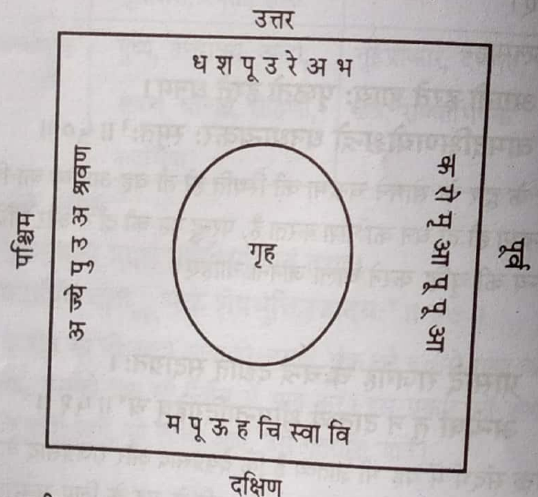


गृहमैत्रीराशिस्वामी च फलमाह-

**मेषवृश्चिकयोभौमः शुक्रोवृषतुलाधिपः ।**
**बुधः कन्यामिथुनयोः कर्कस्य चन्द्रमापतिः ॥ ५४ ॥**
**सिंहस्याधिपतिः सूर्यः शनिर्मकरकुंभयोः ।**
**धनुर्मीनेश्वरोजीव एते क्षेत्रगृहाधिपाः[२] ॥ ५५ ॥**

---

१. 'सप्तमे उत्तमा प्रिति षडाष्टके मरणंध्रुवं, नव पंचे च सामान्यं सुखदं दशचतुर्थके, त्रतिय एकादशि मैत्री द्वितीये द्वादशे रिपु, एवं पट विधोक्तव्यं पुरवेश्मनि परस्परं' मिति प्रकाशितपाठे।
२. 'मेषवृश्चिकयोर्भौम शुक्रोवृषतुलाधिप, बुधकन्यामिथुनप्रोक्ता कर्कः स्वामीचंद्रमा, सिंहस्याधिपतिसूर्य धन-मिनाधिपौगुरु, मकर कुंभाघिपोमंद एतो राशिधिपास्मृता' तत्रैव।



**( स्वक्षेत्रे न पीडयन्ते स्वस्थाने क्षेत्रपालकाः ।**
**विषमस्थाः पीडयन्ते तत्स्थानं भस्मसाद् भवेत्[१] ॥ ५६ )**

मेष और वृश्चिक राशि का स्वामी मङ्गल, वृषभ और तुला का शुक्र, कन्या और मिथुन का बुध, कर्क का स्वामी चन्द्रमा, सिंह का सूर्य, मकर और कुंभ का शनि, धन और मीन का स्वामी गुरु है। बारहों राशियों के इन सातों ग्रहों को क्षेत्र के अधिपति देते यह जाने कि ये सारे राशि स्वामी अपनी राशि में हो तो कष्टकारी नहीं होते। यदि विषम अर्थात् शत्रु के स्वभाव में हो तो कष्ट देते हैं। इसलिए शत्रु-मित्र भाव देखकर गृह निवेश के लिए गणित योजना करनी चाहिए।

ग्रहमैत्री शिल्परत्नाकरे-

**मित्राणि कुजचंद्रेज्योः शत्रू शनिसितौ रवेः ।**
**मित्रे सूर्यबुधावेतौ रिपुः कोऽपिं न शीतगोः ॥ ५७ ॥**
**जीवेंदुरवयो भूमिसूनोर्मित्राणि विद्रिपुः ।**
**सूर्यशुक्रौ हितौ शत्रुश्चंद्रमा बोधनस्य तु ॥ ५८ ॥**
**मित्राणि सूर्यभौमाब्जा बिच्छुक्रौत्वहितौ गुरो ।**
**मित्रे सौम्यशनि शत्रू भार्गवस्येन्दुभास्करौ ॥ ५९ ॥**
**सुहृदौ वित्सितौ सौरेः शत्रवोऽर्ककुजेन्दवः ।**
**सर्वेषामेव खेटानामनुक्तास्ते समाः स्मृताः[२] ॥ ६० ॥**

किस ग्रह का कौन मित्र, शत्रु और सम होता है, यह जाने कि सूर्य के मित्र ग्रह चंद्र, मङ्गल व वृहस्पति होते हैं, शुक्र एवं शनि शत्रु तथा बुध सम है। चंद्रमा के सूर्य व बुध मित्र हैं, गुरु, मङ्गल, शुक्र व शनि सम हैं। मङ्गल के सूर्य, चंद्र, वृहस्पति मित्र हैं, बुध शत्रु एवं शुक्र व शनि सम हैं। बुध के सूर्य व शनि मित्र, चंद्र शत्रु एवं गुरु, शनि

---

१. प्रकाशितपाठे उलब्ध नास्ति।
२. ' शत्रु मन्दसितौसमश्च शशिजो मित्राणि शेषा रवे तीक्ष्णाषुर्हिमरश्मिजश्च सुहृदा शेषः समा शीतगोः। जीवेन्दुष्णकरा कुजस्य सुहृदो ज्ञोरीः सितार्कीसमौ मित्रे सूर्यसितौ बुधस्य हिमगुः शत्रुः समाश्चापरे॥ सुरेसौम्यसितौवरी रविसूतौ मध्यपरेत्वन्यथा सौम्यार्कीसुहृदोसमौ कुजगुरु शुक्रश्यशेषावरी। सकुजोसुहृदौसमः सुरगुरुः सौरस्य चान्यरेरयो ये प्रोक्ताः स्वत्रिकोणभादिषु पुनस्तेमी मयाकीर्तिताः॥ ५७॥' मिति प्रकाशितपाठे।

तथा च ज्ञानप्रकाशदीपार्णवे-
रवेरङ्गारकस्यैवं मैत्री च गुरुचन्द्रयोः, एषां त्रयाणां मैत्री च अन्येषां तु न विद्यते॥ रवौ मन्दे सदा वैरं कुजे मन्दे तथैव च। गुरोः शुक्रस्य वैरं च वैरं च बुधचन्द्रयोः॥ (१, ६५-६६)



Scanned with CamScanner

व मङ्गल सम हैं। वृहस्पति के चंद्र, मङ्गल व सूर्य मित्र हैं, बुध व शुक्र शत्रु ए सम हैं। शुक्र के शनि व बुध मित्र हैं, सूर्य व चंद्र शत्रु एवं मङ्गल व गुरु सम है प्रकार शनि के शुक्र व बुध मित्र हैं सूर्य, चंद्र व मङ्गल शत्रु तथा गुरु सम हैं।

**स्पष्टार्थ चक्र**

| राशि | गृह | मित्रभाव | शत्रुभाव | समभाव |
|---|---|---|---|---|
| सिंह | सूर्य | चंद्र गुरु मङ्गल | शुक्र शनि | बुध |
| कर्क | चंद्र | सूर्य बुध | – | गुरु शुक्र मङ्गल |
| मेष, वृश्चिक | मङ्गल | सूर्य चंद्र गुरु | बुध | शुक्र शनि |
| मिथुन, कन्या | बुध | सूर्य शुक्र | चंद्र | मङ्गल गुरु शनि |
| धन, मीन | गुरु | सूर्य चंद्र मङ्गल | बुध शुक्र | शनि |
| वृषभ, तुला | शुक्र | बुध शनि | सूर्य मङ्गल | चंद्र गुरु |
| मकर, कुंभ | शनि | बुध शुक्र | सूर्य चंद्र मङ्गल | गुरु |

इतिश्रीवास्तुशास्त्रे शिल्पदीपक ग्रंथे आयादिलक्षणम्

नाम द्वितीय प्रकरणम् ॥ २ ॥

# तृतीय प्रकरणम्

## व्ययांशकताराधिपत्योत्पत्तिनाडीवेधादिलक्षणम्

तत्रैव व्ययानयनम्–

**नक्षत्रं वसुभिर्भक्ते यच्छेषं तद् व्ययो भवेत्।**
**एकैकायस्य संस्थाने व्ययश्च विविधः स्मृतः[१] ॥ १ ॥**

अब व्यय निकालने के विषय में जाने कि नक्षत्र का जो अङ्क आया हो, उसे आठ से भाजित करें, जो शेष बचे उसे व्यय जानना चाहिए। एक-एक आय की जगह विविध प्रकार के व्यय जाने। अर्थात् किसी क्षेत्र की लम्बाई और चौड़ाई का गुणा करें, पिण्ड का जो गुणनफल आए, उसको २७ से भाजित करें। इसमें जो शेष रहेगा वह नक्षत्र का अङ्क होगा जबकि इस नक्षत्र के अङ्क को आठ से भाजित करने से जो शेष रहे, उसे व्यय जानना चाहिए। जहाँ आय देखना हों, वहाँ पर व्यय भी समझना चाहिए।

*ज्योतिषरत्नमाला में कहा गया है कि नक्षत्र संख्या में ८ का भाग दिए जाने से शेष व्यय होता है। आय की संख्या अधिक और व्यय की संख्या कम हो तो वह भवन शुभकारक होता है– धिष्ण्ये विभक्ते वसुभिर्व्ययः स्याद्बह्वायमूनव्ययमालयं सन्। (१७, ५)*

**समो व्ययः पिशाचश्च राक्षसस्तु व्ययाऽधिकः।**
**व्ययो न्यूनो यक्षश्चैव धनधान्यकरः स्मृतः ॥ २ ॥**

आय और व्यय का अङ्क समान आए, तो पिशाच संज्ञक व्यय समझना चाहिए। आय से व्यय का अङ्क अधिक मिले तो राक्षस नामक व्यय जाने और यह व्यय का अङ्क यदि न्यून आए तो यक्ष नामक व्यय जानना चाहिए। इनमें से पूर्वोक्त दो तो अनुचित एवं यक्ष संज्ञक व्यय को धन-धान्य की वृद्धि करने वाला जानना चाहिए।

*यही विचार रत्नमाला की महादेवीटीका में हैं– पिशाचो राक्षसो यक्ष इति त्रेधा व्ययो मतः। समागमधिकन्यूनताभिरायसङ्ख्या यथाक्रमम् ॥ (वही)*

---

१. 'नक्षत्रंवसुभिर्भक्तं यतू शेषंतत् व्ययंभवेत्, एकौकायस्यस्थानेषु व्ययमेव विधियते' मिति प्रकाशितपाठे।

अथ व्ययाष्टसंज्ञानि-

**शान्तः पौरः प्रद्योतश्च श्रियानन्दी मनोहरः।**
**श्रीवत्सो विभवश्चैव चिदात्मको व्ययाः स्मृताः[१] ॥ ३ ॥**

१. शांत २. पौर ३. प्रद्योत ४. श्रियानंद ५. मनोहर ६. श्रीवत्स ७. वि... ८. चिदात्मक- ये व्ययों की संज्ञाएँ हैं।

आयमिश्रितव्ययफलमाह-

**ध्वजे शान्तः शुभः सत्यं नित्यं कल्याणकारकः।**
**भोगपूजाबलिं दद्याद् गीतवाद्यं सुरालये[२] ॥ ४ ॥**

ध्वज आय के साथ शांत नाम का व्यय होना चाहिए। यह योग नित्य शु... कल्याणकारी माना जाता है। यदि इसे गीत, वाद्यालय या देवालय में दिया ... भोग, पूजा, बलि आदि प्राप्त होते हैं।

अन्यदप्याह-

**धूम्रस्थाने यदा शान्तो धातुद्रव्यफलप्रदः।**
**सिंहस्थाने यदा पौरो नित्यं श्रीभोगदायकः[३] ॥ ५ ॥**

धूम्राय के साथ शांत नामक व्यय दिए जाने से, धातु और द्रव का फल देने... है। सिंहाय के साथ पौर नामक व्यय देने से नित्य भोगदायक होता है।

अन्यदप्याह-

**प्रद्योतः श्वानसंस्थाने नित्यं स्त्रीसुतसौख्यदः।**
**श्रियानन्दो वृषस्थाने सर्वकर्मफलप्रदः[४] ॥ ६ ॥**

खराय के साथ प्रद्योत संज्ञक व्यय देने से नित्य स्त्री और संतानादि का ... मिलता है। इसी प्रकार वृषाय के साथ श्रियानंद नामक व्यय प्रदान करने से सर्वक... फल मिलता है।

अन्यदप्याह-

**मनोहरः खरे योज्यः सर्वसम्पत्तिदायकः।**

१. 'शांता प्रौरं प्रदोतव्या श्रीयानंद मनोहरा, श्रीवत्सा विभवश्चैव चिंतात्मक वयस्मृता' मिति प्रकाशित...
२. 'ध्वजेशांताशुभाप्रोक्ता नित्यंकल्याणकारका, भोगापूजाबलंनित्यं गतवादित्रसुरालये' ...
३. 'धुम्रस्थानयेदाशांता धातुद्रव्यफलप्रदा, प्रौरंचसिहस्थानेषु नित्यंभोगाश्रीयादिशं' तत्रैव।
४. 'प्राद्योतस्वानसंस्थाने नित्यंसुतस्यसौख्यदा, श्रीयानंदवृषभस्थाने सर्वकामफलप्रदः' तत्रैव।



**श्रीवत्सश्च गजे योज्यो गजसिंहबलाधिकः[१] ॥ ७ ॥**

खर आय के साथ मनोहर नामक व्यय दिए जाने से सर्व प्रकारेण संपत्ति मिलती ... गज आय के साथ श्रीवत्स संज्ञक व्यय देने से गज और सिंह से भी अधिक बल की ...ति होती है।

...न्यदप्याह-

**विभवो ध्वाङ्क्ष संस्थाने सर्वकर्मफलप्रदः।**
**चिदात्मकं व्ययं नित्य-मायेष्वष्टसु वर्जयेत्[२] ॥ ८ ॥**

ध्वांक्ष आय के साथ विभव व्यय देने से सर्वकार्य की सिद्धि होती है। चिदात्मक (...न्तात्मक ?) व्यय आठों आयों में से कोई भी वर्जनीय है। इस प्रकार आठों आयों ... साथ आठ ही व्यय का तालमेल जानना चाहिए।

...त्रैव अशंकानयनम्-

**मूलराशौ व्ययं क्षिप्त्वा गृहनामाक्षराणि च।**
**त्रिभिरेव हरेद्भागं यच्छेषं स्यात्तदंशकः ॥ ९ ॥**

मूल राशि (क्षेत्रफल) के अङ्क में व्यय का अङ्क मिलाए और उसमें गृह के नाम ...द जितने अक्षर हो उतने अङ्क मिलाने से जो योग आता हो, उसे ३ से भाजित करने से ...ो संख्या शेष रहे, उसे अंशक जानना चाहिए।

*श्रीपति का मत है कि व्यय की संख्या को पिण्ड या क्षेत्रफल में जोड़कर ध्रुवादि ...गृहों के नामाक्षर संख्या को जोड़ें। उस योगफल में तीन का भाग दिए जाने पर एकादि ...शेष रहे तो क्रम से इन्द्र, यम और भूपति का अंश होता है। उसमें इंद्र व राजा के अंश ...वाला गृह उत्तम तथा यम के अंश वाला गृह अनुचित होने से त्याज्य है- व्ययान्विते ...क्षेत्रफले गृहस्य ध्रुवादिनामाक्षरमिश्रिते च। त्रिभिर्विभक्ते क्रमशोऽशकः स्यादिंद्रो यमो ...भूपतिरन्तकोऽसन्॥ (वही ६)*

इसका उदाहरण है कि माना कि किसी क्षेत्रफल ६८७ में व्यय की संख्या ७ तथा ध्रुवादि नाम की संख्या के २ को जोड़ने कर लब्धि में ३ का भाग दिया तो ३ ही शेष रहा जो कि राजांश है-

१. 'मनोहरंखरंयोग्यं सर्वसंपत्तिदायकं, श्रीवत्संगजयोग्यंच गजसिंहबलाधिकं' मिति प्रकाशितपाठे।
२. 'विभवंध्वांक्षमेवोक्तं सर्व काम फलम् दिशेत्, चिंतात्मकवयमित्योह आयाष्टेषु विवर्जयत्' तत्रैव।

६८७ + ७ + २ = ६९६ को ३ से विभाजित करने पर शेष ३ या रा

**इन्द्रो यमश्च राजा च अंशकास्त्रय एव च।**
**त्रिप्रमाणं त्रिधोक्तं च ज्येष्ठ-मध्यम-कन्यसम्[1] ॥ १० ॥**

उक्त गणना में यदि १ शेष बचे तो इंद्रांश, २ शेष बचे तो यमांश और ३ तो राजांश जाने। ये अंशक अनुक्रम से तीन प्रकार के हैं-ज्येष्ठ, मध्यम और

इंद्रांशस्थानानि-

**प्रासादे प्रतिमालिङ्गे जगतीपीठमण्डपे।**
**वेदीकुण्डेस्त्रुचि चैव इन्द्रध्वजपताकयोः ॥ ११ ॥**
**स्वर्गादि भोगयुक्तेषु नृत्यगीतमहोत्सवे।**
**अन्येषु शुभकार्येषु इन्द्रांशक नियोजयेत्[2] ॥ १२ ॥**

देवालय, मूर्ति, शिवलिङ्ग, देवालय की जगती, पीठ, मण्डप, वेदी, होम करने का स्थल, इन्द्रध्वज, पताका, स्वर्गिक सुख उपभोग योग्य स्थल, नृत्य गीतशाला, महोत्सव स्थलादि अन्यान्य कार्यों में इन्द्राश दिया जाना चाहिए।

यमांशस्थानानि-

**क्षेत्रादिसंज्ञा नागेन्द्रे वाणागारे च भैरवे।**
**गृहे मातृगणदेव्या यमांशक मिहोच्यते ॥ १३ ॥**
**विविध वणिजः कर्म मद्यमांसादिकोद्भवम्।**
**इत्युक्तं क्रमशः स्थाने दातव्यं च यमांशकम्[3] ॥ १४ ॥**

क्षेत्रपाल, नागेन्द्र, बाणगृह, भैरव, गृह, मातृदेवी इत्यादि मूर्तियों में यमांश जाना चाहिए। इसी प्रकार मद्य-मांस विपणन-वीथी (व आयुध) को भी यमां उठाया जाना चाहिए।

राजांशस्थानानि-

**पुर-प्राकार-नगरे खेटकूटे च पर्वते।**

---

१. 'मूलराशैवयंक्षेप्य गृहानामाक्षराणिच, त्रिभिरेवहरैद्भागं यच्छषंअंशकस्मृता' मिति प्रकाशित
२. 'प्रासादेप्रतिभालिङ्गे जगतिपिठमंडपे, वेदीकुंडशचीश्चैव इन्द्रोद्वजपताकयोः, स्वर्गाद्याभागसं नृत्यगीतमहोत्सवे, अन्येषुशुभकार्येषु इद्रांशव मिहोच्यते' तत्रैव।
३. 'क्षेत्रपालंभैरवस्यं बाणाधिकेतथैवच, ग्रहमात्रगणदेक यदाशकमिहोच्यते, वाणिज्यं वि चैव मद्यमांसादिकोद्भव, आयुधानासमस्तैषु यमाशकप्रदापयेत्' तत्रैव।



**हर्म्यादि राजसदने प्रशस्ते राजकर्मणि[1] ॥ १५ ॥**
**सिंहासने च शय्यायां गजाश्वरथवाहने।**
**राजोपस्कर हर्म्येषु राजांशक मिहोच्यते[2] ॥ १६ ॥**

पुर, प्राकार, नगर खेड़ा या छोटा गांव, कूट, शिखर-पर्वत, हवेली, राजमहल दि सभी प्रशस्त राजकार्यों के स्थान और सिंहासन, शय्या, गज, अश्व के रथ-वाहन ा के उपस्कर, हर्म्य आदि में राजांश देना शुभ होता है।

*विश्वकर्माप्रकाश में कहा गया है कि जिस गृह में इन्द्रांश आता हो, वहाँ पर वास करने वाला व्यक्ति निरंतर पदोन्नति, यश को पाता है और अधिकाधिक सुख गता है। यमांश में रोग जन्य पीड़ा, त्रासदी और मृत्यु शोकादि फल होते हैं जबकि जांश में धन-धान्य, वैभव व संतति सुख मिलता है- इंद्रांशे पदवीवृद्धिर्महत्सौख्यं जायते। यमांशे मरणं नूनं रोगशोकमनेकधा ॥ राजांशे धनधान्यप्राप्तिः पुत्रवृद्धिश्च जायते ॥ २, ७१-७२)*

गृहाक्षरानुसार अंशादिचक्र

| द्वयक्षरगृहम् | | | | त्र्यक्षरगृहम् | | | | चतुरक्षरगृहम् | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| त्रिशे पिं. | २ | २ | २ | त्रिशे पिं. | ३ | ३ | ३ | त्रिशे पिं. | ४ | ४ | ४ |
| १ | इंद्र | यम | राज | १ | यम | राज | इंद्र | १ | राज | इंद्र | यम |
| २ | यम | राज | इंद्र | २ | राज | इंद्र | यम | २ | इंद्र | यम | राज |
| ३ | राज | इंद्र | यम | ३ | इंद्र | यम | राज | ३ | यम | राज | इंद्र |
| व्यय | १ | २ | ३ | व्यय | १ | २ | ३ | व्यय | १ | २ | ३ |
| | ४ | ५ | ६ | | ४ | ५ | ६ | | ४ | ५ | ६ |
| | ७ | ८ | | | ७ | ८ | | | ७ | ८ | |

अत्रैव ताराविचारः राजवल्लभवास्तुशास्त्रे-

**यावद् गृहर्क्षं गणयेत् स्वधिष्ण्यात्**
**ताराविभक्ते नवभिश्च शेषाः।**

---

१. प्रकाशिपाठे अनुपलब्धे।
२. 'सिंहासेनचशय्यायां अश्वादिगजवाहने, राज्यौपस्कर्णहर्म्येषु राजांशकपुरादिषु' मिति प्रकाशितपाठे।

**बुधैस्तृतीया सकले विवर्ज्या या**
**पञ्चमी सप्तमिका न शस्ता[१] ॥ १७ ॥**

गृहपति के जन्म नक्षत्र से गृह के नक्षत्र तक की गणना करें; इससे जो आए, उसमें नौ का भाग दें, जो शेष रहे उतनी ही तारा मानी जानी चाहिए। वि तीसरी तारा का सभी कार्यों में त्याग करने को कहा है। पाँचवीं व सातवीं तारा नहीं है अर्थात् पहली, दूसरी, चौथी, छठी, आठवीं एवं नवीं तारा श्रेष्ठ मानी ग

अथ तारासंज्ञानि–

**शान्ता[१] मनोहरा[२] क्रूरा( कुरा ? )[३] विजया[४] कलहोद्भवा[५]।**
**पद्मिनी[६] राक्षसी[७] वीरा( बाला ? )[८] आनंदा[९] नवमी स्मृता॥**

अब ताराओं के नाम बताए जाते हैं– १. शांता २. मनोरमा ३. क्रूरा ४. वि ५. कलहोद्भवा ६. पद्मिनी ७. राक्षसी ८. वीरा और ९. आंनदा।

**गृह तारा गणित चक्र**

| गृह के नक्षत्र | | गृहेश के नक्षत्र | ९ | ८ | ७ | ६ | ५ | ४ | ३ | २ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | १८ | १७ | १६ | १५ | १४ | १३ | १२ | ११ |
| | | | २७ | २६ | २५ | २४ | २३ | २२ | २१ | २० |
| १९ | १० | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ |
| २० | ११ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १ |
| २१ | १२ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १ | २ |
| २२ | १३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १ | २ | ३ |
| २३ | १४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १ | २ | ३ | ४ |
| २४ | १५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १ | २ | ३ | ४ | ५ |
| २५ | १६ | ७ | ८ | ९ | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ |
| २६ | १७ | ८ | ९ | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ |
| २७ | १८ | ९ | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ |

१. 'यवद्गृहर्क्षं गणयत्स्वधिष्ण्या त्ताराविभक्ते नवभिश्च शेषा, बुधैस्तृतिया सकलेषु वर्ज्या या पं सप्तमिका न शस्ता' मिति प्रकाशितपाठे।
तथा च दीपार्णवे–
गणयेत् स्वामि–नक्षत्राद् यावदृक्षं गृहस्य च।
नवभिश्च हरेद् भागं शेषास्तारा: प्रकीर्तिता: ॥ (१, ८३)



थाधिपत्यानानयनम् सच्छिल्पतंत्रे क्षीरार्णवे च–

**यदायव्ययसंयोगे यदैक्यं वसुभिर्भजेत्।**
**शेषस्त्वधिपतिः केचिद् विषमः स भयावहः[१] ॥ १९ ॥**

गृह की आय व व्यय का अङ्क जोड़कर जो लब्धि हो, उसके आठ भाग करें। जो अङ्क शेष रहे, उसे उस गृह का अधिपति जानना चाहिए। यदि अधिपति सम संख्यक हो तो उत्तम और विषम संख्य हो तो भयावह जाने।

सूत्रधार मण्डन का मत है कि गृह की लम्बाई में चौड़ाई का गुणा करें और फल में पुनः ऊँचाई जोड़ने पर प्राप्त संख्या में ८ का भाग दें। शेष बची संख्या अधिनाथ होती है। शेष की सम संख्या शुभ एवं विषम संख्या शुभ नहीं मानी जाती है।[२]

अधिपत्यर्थ अन्यविधि च संज्ञानि तत्रैव–

**( गेहस्योदयकं क्षेत्रफलेन गुणयेद्बुधः।**
**अष्टभिस्तु हरेच्छेषं शुभः सोऽधिपतिः समः।। २० ॥)**
**विकृतः कर्णकश्चैव धूम्रदो वितथस्वरः।**
**विडालो दुन्दुभिश्चैव दान्तः कान्तोऽधिनायकः[३] ॥ २१ ॥**

बुद्धिमान शिल्पी को चाहिए कि गृह के उदय क्षेत्रफल के अङ्क के साथ गुणा करते हुए जो अङ्क आए उसे ८ से भाग करते हुए जो शेष बचे, उसे अधिपति जाने और जो अधिपति सम हो, वह शुभ है, १. विकृत २. कर्णक ३. धूम्रद ४. वितथस्वर ५. विडाल ६. दुन्दुभि ७. दांत ८. कांत– इस प्रकार आठ अधिपति के नाम हैं।

अथोत्पत्ति तत्रैव–

**नवघ्नं गृह नक्षत्रं रुद्रसङ्ख्या समन्वितम्।**
**पञ्चभिस्तु हरेद्भागं शेषमुत्पत्तिः पञ्चधा[४] ॥ २० ॥**

प्रासाद या गृह के नक्षत्र को नौ से गुणाकर जो लब्धि हो, उसमें ११ मिलाएं

१. 'यद्वाय व्यय संयोगे यदैक्यं वसुभिभजेत्, शेषस्त्वधिपतिः केचिन्विषमः सभयावह' मिति प्रकाशित पाठे।
२. तथा च राजवल्लभवास्तुशास्त्रे–
दैर्घ्यं पृथुत्वेन च ताडनीयं तयोर्यदैक्यं पुनरुच्छ्रयेण।
शेषोऽधिनाथो वसुभाजितेऽस्मिन् समः प्रशस्तो विषमस्तु नैव। (३, २२)
३. ' विक्रतः कर्णकश्चैव धूम्रदा वितथस्वरः। बिडालो दुन्दुभिश्चैव दांत कांतोऽधिनायक ॥ १९ ॥' मिति प्रकाशित पाठे। पूर्व श्लोकः सच्छिल्पतंत्रे विशेषः। कोष्ठकांकित श्लोकः प्रकाशितपाठे नास्ति।
४. 'नवघ्नं गृह नक्षत्रं रुद्रसंख्या समन्वितम्, पंचभिस्तु हरेत् भागं शेषमुत्पत्ति पंचधा' तत्रैव।

Scanned with CamScanner

और जो संख्या हो, उसे पाँच से विभाजित करने जो शेष बचें, उसे पाँच प्रकार की उत्पत्ति समझें। (यदि १ शेष हों तो बहुत दान, २ शेष हों तो सुखप्राप्ति, ३ तो स्त्रीप्राप्ति, ४ शेष हों तो धनागम और ५ शेष हों तो पुत्रप्राप्ति होती है।)

अथोधिपतिवर्गवैरमाह क्षीरार्णवे-

**सूपर्ण ओतुः सिंहः श्वा सुसर्पाखु मृगमीढकाः।**
**वर्णाधिपाः क्रमा हष्टौ भक्ष्यो यः पञ्चमो मतः ॥ २१ ॥**

१. गरुड २. बिडाल ३. सिंह ४. श्वान ५. सर्प ६. मूषक ७. मृग और ८ ये आठों अनुक्रम से अपने-अपने वर्ग के अधिपति होते हैं। अधिपति के वर्ग में का उससे पाँचवाँ भक्षक हैं, इसलिए त्याज्य होता है। यथा- गरुड का पाँचवें सर्प है, तीसरे सिंह और मृग का वैर है, द्वितीय बिडाल और मूषक वैर है, चतुर्थ श्वान आठवें मेष का वैर है।

अथ योनिविचारमाह तत्रैव-

**अश्वोऽश्विनी शतभयोर्भरणीपौष्णयोर्गजः।**
**कृतिकापुष्ययोश्छागो रोहिणीमृगयोरहिः[1] ॥ २२ ॥**

अश्विनी एवं शतभिषा की अश्वयोनि है। इसी तरह भरणी व रेवती की योनि, कृतिका और पुष्य की छाग योनि, रोहिणी व मृगशिरा की सर्प योनि मानी गई

**श्वानो मूलार्द्रयोर्योनिः सार्पादित्ये बिडालकः।**
**पूर्वाफामघयोराखुरुफोत्तरभयोस्तु गौः[2] ॥ २३ ॥**

मूल व आर्द्रा की श्वान योनि, अश्लेषा व पुनर्वसु की मार्जार या बिडाल तथा पूर्वाफाल्गुनी व मघा नक्षत्रों की उंदर या मूषक योनि, उत्तराभाद्रपद व उत्तराफाल दोनों की गाय योनि मानी गई है।

**हस्तस्वात्योस्तु महिषी व्याघ्रश्चित्राविशाखयोः।**
**ज्येष्ठानुराधयोरेणः पूषाढाश्रवणे कपिः ॥ २४ ॥**
**उषाढाभिजितोर्बभ्रुः सिंह पूभाधनिष्ठयोः[3]।**

---

१. ‘अश्वोऽश्विना शत भयोर्भरणिपौष्टमयागजः, क्रतिका पुष्ययो छाग रोहिणी मृगयोरहिः’ मिति पाठां
२. ‘श्वानो मूलार्दयोर्योनिः सर्पादित्यबिडालकः। पुर्वाधा मधयोराखु रुफोत्तरम भयोस्तुगो’ तत्रैव।
३. ‘हस्तस्वात्योस्तु महिषी व्याघ्र चित्राविशाखयोः, जेष्टानुराधया हरणः पुषाढ़ा श्रवणे क उषाढाभिजितोर्बभ्रुः सिंह पुमा धनिष्टयोः’ तत्रैव।



स्वाती व हस्त महिषी योनि, चित्रा व विशाखा बाघ योनि, ज्येष्ठा और अनुराधा रण योनि, पूर्वाषाढ़ा व श्रवण वानर योनि के माने गए हैं। उत्तराषाढ़ा व अभिजित् कुल योनि एवं पूर्वाभाद्रपद व घनिष्ठा नक्षत्र सिंह योनि के हैं। इस योनि विभाजन के नुसार जो वैर लोक व्यवहार में लागू हो, उसे स्वीकारते हुए त्यागना चाहिए।

**(मेषमर्कटयो वैरं गोव्याघ्रं गजसिंहयोः ॥ २५ ॥**
**श्वानैणं सर्पनकुलं विडालोन्दुरकं महत्।**
**महिषाश्वमिति त्याज्यं मृत्युः स्त्रीप्रभुवेश्मसु ॥ २६ ॥)[1]**

योनिवैर का इस प्रकार स्पष्ट जाने कि मेष और बंदर का वैर है, गाय का व्याघ्र , गज का सिंह से, श्वान का हरिण से, सर्प का नकुल से, बिडाल का मूषक से, महिष का अश्व से वैर कहा गया है। इन संयोगों को मृत्युकारक जानकर त्याग देना चाहिए, विशेषकर विवाह, स्वामी-सेवक और गृह व गृहपति के सम्बन्ध में यह विचारणीय है।

नक्षत्रमैत्रीवैरञ्च तत्रैव-

**वैरं चोत्तरफाल्गुन्यश्वियुगलयोः स्वातीभरण्योर्द्वयो**
**रोहिण्युत्तराषाढयोः श्रुतिपुनर्वस्वोर्विरोधस्तथा।**
**चित्रा-हस्तभयोश्च पुष्यफणिनोर्ज्येष्ठाविशाखद्वयोः**
**प्रासादे भवनासने च शयने नक्षत्रवैरं त्यजेत् ॥ २७ ॥**

उत्तरा फाल्गुनी और अश्विनी दोनों ही नक्षत्रों में परस्पर वैर माना गया है। इसी तरह स्वाती और भरणी, रोहिणी और उत्तराषाढा, श्रवण और पुनर्वसु, चित्रा और हस्त, पुष्य और आश्लेषा तथा ज्येष्ठा और अश्लेषा नक्षत्रों में भी वैर है। इसलिए प्रासाद, भवन, आसन और शय्या के प्रसंग में परस्पर विरोधी नक्षत्रों को त्यागना चाहिए।

नाडीवेधः राजवल्लभवास्तुशास्त्रे-

**अश्विन्यादिकभत्रयं फणिनिभं चक्रं त्रिनाड्युद्भवं**
**ह्येकस्यां वरकन्ययोश्च यदि भं तन्मृत्युदं चांशतः।**
**नाडी सेवकमित्रगेहपुरतस्त्वेका शुभा सव्यधा**
**आयादित्रिकपञ्चसप्तनवभिस्त्वंगै गृहं सौख्यदम् ॥ २८ ॥**

गृहकार्य में नाडी अङ्ग को भी देखना चाहिए। इसके लिए सर्प के आकार का

---

१. कोष्ठकांकित श्लोकः प्रकाशितपाठे अनुपलब्धे। उद्धृतौ सच्छिल्पतंत्रे च क्षीरार्णवे (१. ३५-३६)

तीन नाड़ी का चक्र बनाकर उसमें अश्विन्यादि २७ नक्षत्रों का वेध करें। वेध के ध्यान रखें कि सर्पाकृति चक्र की एक नाड़ी में वर एवं कन्या के नक्षत्र नहीं क्योंकि वे मृत्युकारक होते हैं, इसलिए उतना अंश छोड़ देना चाहिए। परंतु सेवक, मित्र, गृह व उसका स्वामी, नगर, राजाओं के नक्षत्रों का नाड़ी में वेध हो है। गृह के मामले में नौ प्रकार के आयादि का ध्यान रखने को कहा है। इसमें भी पाँच, सात या नौ को ही विशेष रूप से सुखकारी माना गया है।[१]

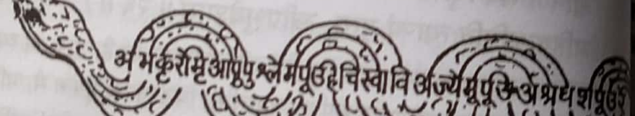


अथ क्रमप्रासकूटप्रधानं नाडीकूटं रामदैवज्ञमते-

**ज्येष्ठार्यम्णेशनीराधिपभयुगयुगं दास्त्रभं चैकनाडी**
**पुष्येन्दुत्वाष्ट्रमित्रान्तकवसुजलभं योनिबुध्न्ये च मध्या।**
**वाय्वग्निव्यालविश्वोडुयुगयुगमथो पौष्णभं चापरा स्याद्**
**दम्पत्योरेकनाड्यां परिणयनमसन्मध्यनाड्यां हि मृत्युः[२] ॥ २९**

इति विविध अ...

ज्येष्ठा, आर्द्रा, उत्तराफाल्गुनी एवं शतभिषा- इन से दो-दो नक्षत्र (ज्येष्ठा-मूल, आर्द्रा-पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी-हस्त, शतभिषा-पूर्वाभाद्रपद) और अश्विनी- इन नौ नक्षत्रों की आदि नाड़ी कही गई है। पुष्य, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, भरणी, धनिष्ठा, पूर्वाषाढ़, पूर्वाफाल्गुनी तथा उत्तरा भाद्रपदा- इन नौ नक्षत्रों की मध्य नाड़ी होती है। इसी प्रकार स्वाती, कृतिका, आश्लेषा एवं उत्तराषाढ़ से दो दो नक्षत्र (स्वाती, विशाखा, कृतिका, रोहिणी, आश्लेषा, मघा, उत्तराषाढ़ तथा श्रवण) तथा रेवती- ये नौ नक्षत्र अन्त्य नाड़ी के कहे गए हैं। वर-वधू की एक नाड़ी यदि वह आद्य हो या अन्त्य हो तो अशुभ फल प्रदान करती है और मध्या नाड़ी दोनों की हो तो मृत्यु का कारण बनती हैं। यही विचार गृह-गृहस्वामी के लिए भी जानना चाहिए।

१. विशेषोच्च क्षीरार्णवे-
आयऋक्षचंद्रगण व्यय तारांशक राशयः।
राशिमैत्री ग्रहमैत्री नाडीवेध अधिपतिः॥
लग्नतिथिवारोत्पत्ति अधिपतिवर्गवैरकम्।
योनिवैरं ऋक्ष वैरं स्थितिर्नांशेकविंशतिः॥ (१, ५१-५२)

२. 'येष्टा रौद्रार्यमांभः पतिभयुगयुगं दास्त्रभं चैकनाडी। पुण्येदुत्वाष्ट्रमित्रांतकवसु जलभं योनिबुन्धे च मध्या वाय्वाग्नि व्याल विश्वो युगयुगमथो पोष्णभं चापरास्या। दंपत्योरेक नाडयां परिणयनमसन्मध्यानाड्यां मृत्युः॥ ४०॥' मिति प्रकाशितपाठे। ज्ञातव्ये- प्रकाशितपाठमुलब्धश्लोकं अध्यायान्त्ये।
तथा च क्षीरार्णवे-
त्रयनाड्यात्मकं चक्रं सर्पाकार स्वरूपकम्।
नवभागाङ्कितं कुर्यादश्विन्यादि त्रिकं लिखेत्॥
एक नाडी स्थितं तस्मिनृक्षं चेद् वरकन्ययोः।
तेन मरणं विजानियादंशतश्चे स्थितं त्यजेत्॥
स्वामि सेवक मित्राणां गृहाणां गृहस्वामिनां।
राज्ञा तथा पौराणां च नाडीवेधः सुखावहः॥ १, ३१-३३



### नाड़ी एवं गुणबोधक चक्र

| नक्षत्र | आर्द्रा पुन. उ.फा हस्त ज्येष्ठा मूल शत. पू. भा. अश्वि. | भर. मृग पु. पू. भा चित्रा अनु. पु. षा. धनि. उ.भा. | कृ. रो. आपूले. मघा स्वाति विशा. उ.षा. श्र. रेवती |
|---|---|---|---|
| ८ | आदि | मध्य | अंत |
| आदि | ० | ८ | ८ |
| मध्य | ८ | ० | ८ |
| अंत | ८ | ८ | ० |

अथ गृहाणामुत्सङ्गादिसंज्ञा राजवल्लभवास्तुशास्त्रे-

**(उत्सङ्गनामाभिमुखप्रवेशः**
**स्यात्पृष्ठभृङ्गो भवनस्य पृष्ठात्।**
**विनाशहेतुः कथितोऽपसव्यः**
**सृष्ट्या प्रशस्तो भवनेऽखिले च॥ ३०॥)[१]**

गृह के सामने से प्रवेश को 'उत्सङ्ग' नामक प्रथम प्रवेश कहा जाता है। पीछे से प्रवेश को 'पृष्ठभङ्ग' कहा जाता है, जो विनाशक है। पहले द्वार में प्रवेश के बाद दाईं ओर झुककर गृह में जाने को 'उपसव्य' तथा बाईं ओर झुककर जाने को 'सव्य' प्रवेश कहा जाता है। सव्य तथा अपसव्य दोनों ही प्रवेश सभी गृहों के लिए ठीक माने गए हैं। तथा च-

**प्रावेशः प्रतिकायको वरुणदिग्वक्त्रो भवेत् सृष्टितो**
**वामावर्त उदाहृतो यममुखोऽसौ हीनबाहुर्बुधैः।**

१. कोष्ठकांकित श्लोकः प्रकाशितपाठे अनुपलब्धे। उद्धृतौ राजवल्लभे (१, ३१)

Scanned with CamScanner

**उत्सङ्गो नरवाहनाभिवदनः सृष्ट्या यथा निर्मितः**
**प्राग्वक्त्रोऽपि च पूर्णबाहुरुदितो गेहे चतुर्धा पुरे[1] ॥ ३१ ॥**

पश्चिम दिशा में मुख वाले गृह में प्रवेश के बाद पुनः सृष्टि मार्ग से पश्चिम में प्रवेश को 'प्रतिकाय' प्रवेश कहा गया है। दक्षिण दिशा में मुख वाले गृह में प्र... पश्चात् बाईं ओर गृह में जाने को 'हीनबाहु' प्रवेश, उत्तर दिशा में मुख वाले ... सृष्टिमार्ग से प्रवेश होकर जाने को 'उत्सङ्ग' प्रवेश तथा पूर्व दिशा में मुख वाले ... प्रवेश के बाद सम्मुख मार्ग से गृह में जाने को 'पूर्वबाहु' प्रवेश कहा जाता है, यह नगर के संबंध में भी ज्ञातव्य है।

द्वार-खटकीस्थापनविचारः राजवल्लभवास्तुशास्त्रे-

**द्वाराग्रे खटकीमुखं च [2]तदधो द्वाःषोडशांशाधिकं**
**सर्वं वा शुभमिच्छता च सततं कार्यं तु [3]पट्टादधः।**
**[4]तन्नं न शुभं [5]तुलातलगतं कुक्षौ तथा [6]पृष्ठकम्**
**काष्ठं पञ्चक एवं नीतमहितं यन्मूल पूर्वोत्तरम् ॥ ३२ ॥**

यदि द्वार के पास खिड़की बनानी हो तो द्वार की ऊंचाई के १६वें हिस्से ... खिड़की की ऊँचाई में योग करने के बाद जो माप हो उस माप की बनाए। खिड़की ... ऊँचाई बढ़ाने के लिए ऊपर की ओर कुछ नहीं करना, बल्कि नीचे की ओर ही ... चाहिए, जिससे कि द्वार व खिड़की दोनों की ओर एक ही सीध में हो, लेकिन द्वा... उदुंबरों से खिड़की के उदुंबर नीचे रखे जाते हैं। इसके लिए नीचे की ओर १६वाँ ... बढ़ाना चाहिए, फिर भी द्वार के उदुंबर से खिड़की का उदुंबर नीचा ही होना चाहि... अपना शुभ चाहने वाले मनुष्यों को कभी भी घर के द्वार को पाट से नीचे ही र... चाहिए अर्थात पाट के तल से किसी भी स्थिति में ऊँचा नहीं होना चाहिए। इसी त... मुख्यशाला के द्वार की ऊँचाई से दूसरी सभी द्वारों का नीचे का नीचे ही रखना चाहि... इसी तरह कुक्षी व पीछे के भाग में एक जैसे दरवाजे रखने चाहिए। इमारती लक...

१. 'प्रवेशः प्रतिकायको करुणदिग्वक्त्रो भवेत्सृष्टितौ। वामावर्त्त उदाहृतो यममुखे सौ हीनबाहुर्बुधैः ॥ उत... नरवाहनाभिवदनः श्रष्ट्यायथानिर्मितः। प्रागवक्त्रा च पुर्णबाहु रुदितो गेहे चतुर्द्धापुरे॥ २७॥' मिति प्रकाशित...
२. 'तदधोद्धः' तत्रैव।
३. 'पट्टदधः' तत्रैव।
४. 'तन्नुनं' तत्रैव।
५. 'मुला तलगतं' तत्रैव।
६. 'पृष्ठगं' तत्रैव।



...भी भी पञ्चक में नहीं लानी चाहिए तथा लकड़ी का ढेर भी घर में पूर्व या उत्तर दिशा ...नहीं रखना चाहिए।

...था च-

**द्वारोर्ध्वे यद् द्वारमस्य प्रमाणं [1]सङ्कीर्णं**
**वा शोभनं नाधिकं तत्।**
**[2]ह्रस्वद्वाराण्येव यानि [3]पृथूनि तेषां**
**[4]शीर्षाण्येकसूत्राणि कुर्यात् ॥ ३३ ॥**

यदि गृह के द्वार के ऊपर द्वार रखना हो तो ऊपर वाले को नीचे वाले की ...बनिस्पत छोटा बनाना चाहिए। नीचे के द्वार से ऊपर का द्वार संकड़ा होने के साथ ही ...उससे ऊँचाई में भी ज्यादा नहीं होना चाहिए। छोटे-बड़े सभी द्वारों के शीर्षभाग को ...समसूत्र में रखा जाना आवश्यक है।

नियमविरुद्धद्वारफलमाह-

**सर्वं द्वारं चीयमानं रुजायै**
**यद्वा [5]ह्रस्वं तत्करोत्यर्थनाशम्।**
**गेहाद्यं यत्पूर्ववास्तुस्वरूपं**
**तेषां भङ्गान्नैव सौख्यं कदाचित् ॥ ३४ ॥**

नियम से अधिक प्रमाण वाले द्वार यदि उपयोग में लिए जाए तो परिजनों को ...व्याधियाँ घेर लेती हैं। प्रमाण से हीन द्वार धननाश करते हैं। पूर्व निर्मित गृह में जिस ...तरह वास्तु है, यदि उसको भंग किया जाता है, तो गृहपति कभी सुखी नहीं रहता है।

...द्वारदोषानाह मण्डनः

**द्वारं विद्धमशोभनं च तरुणा कोणभ्रमस्तम्भकैः**
**कूपेनापि च मार्गदेवभवनैर्विद्धं तथा कीलकैः।**
**[6]उच्छ्रायाद् द्विगुणां विहाय पृथिवीं वेधो न भित्त्यन्तरे**

१. 'संकिर्ण' मिति प्रकाशितपाठे।
२. 'ह्रस्वद्वारण्येव' तत्रैव।
३. 'पृथुनी' तत्रैव।
४. 'शिर्षाण्येकसुत्राणि' तत्रैव।
५. 'ह्रस्वं' तत्रैव।
६. 'उच्चायत्' तत्रैव।

**प्राकारान्तर-राजमार्ग[1]परितो [2]वेधो न कोणद्वये॥ ३५॥**

द्वार स्थापना अवसर पर वृक्ष, दूसरे के मकानों का कोना, परनाला, दूसरे का स्तंभ, देवमंदिर तथा कीलक— ये पाँच वेध अर्थात नकारात्मक वस्तुएं टालें चाहिए, लेकिन घर की ऊंचाई से दुगुनी दूरी पर यदि कोई वेध है तो किसी प्रकार दोष नहीं लगता। द्वार व उसके सामने जो वेध आए उनके बीच यदि दीवार, परकोटा, राजमार्ग या सम्मुख घर के दो कोने हो तो वेध दोष नहीं लगता है।

अथ दशविधद्वारमाह-

**दैर्घ्ये सार्द्धशताङ्गुलं च दशभिर्हीनं चतुर्द्धा [3]विधिः**
**प्रोक्तं [4]वाऽथ शतं त्वशीतिसहितं [5]युग्मं नवत्या शतम्।**
**तद्वत् [6]षोड्शभिः शतं च नवभिर्युक्तं तथाशीतिकं**
**द्वारं मत्स्यमतानुसारि दशकं योग्यं विधेयं बुधैः॥ ३६॥**

'मत्स्यपुराण' के मतानुसार द्वार की ऊँचाई १० तरह की उत्तम है। प्रथम अङ्गुल बराबर द्वार की ऊंचाई हो, इसके भी चार भेद हैं, १५० में से १०-१० अं कम कर १४०, १३०, १२०, ११० अङ्गुल के द्वार बनाने चाहिए। इसी तरह १ १९०, ११६, १०९ व ८० अङ्गुल के द्वार भी बनाए जा सकते हैं।

*मत्स्यपुराण में कहा गया है कि एक सौ साढ़े ४० अङ्गुल ऊँचा द्वार धनप्रद उत्तम होता है। अन्य १३० और १२० अङ्गुल के होते हैं। शुद्धवायु प्रवाह के लिए १ अङ्गुल का द्वार होना चाहिए। उसी प्रकार ११०, ११६, १०९, ८० अङ्गुल ऊँचाई वाले द्वार होते हैं, अन्य प्रकार के द्वार वर्जित हैं क्योंकि वे चित्त को उद्विग्न करने होते हैं- त्रिपञ्चसप्तनवभिः शाखाभिर्द्वारमिष्यते। कनिष्ठमध्यमं ज्येष्ठं यथायोग्यं प्रकल्पये अङ्गुलानां शतं सार्द्धं चत्वारिंशत्तथोत्तरम्। त्रिंशद्विंशोत्तरं चान्यद्वान्यमुत्तममेव च॥ चाशीतिसहितं वातनिर्गमने भवेत्। अधिकं दशभिस्तद्वत् तथा षोडशभिः शतम्॥ शतम् तृतीयं च नवशीतिभिस्तथा। दशद्वाराणि चैतानि क्रमेणोक्तानि सर्वदा॥ अन्यानि वर्जनीय मानसोद्वेगदानि तु। (अध्याय २७०, २१-२५)*

---

१. 'परतो' मिति प्रकाशितपाठे।
२. 'वेधौ' तत्रैव।
३. 'विधः' तत्रैव।
४. 'चाऽथ' तत्रैव।
५. 'युक्तं' तत्रैव।
६. 'शोडशभिः' तत्रैव।



*उक्त पुराण में कनिष्ठ, मध्यम व ज्येष्ठ मण्डप-द्वार बताए गए हैं-*

*१. कनिष्ठद्वार- त्रिशाखीय*

*२. मध्यमद्वार- पञ्चशाखीय*

*३. ज्येष्ठद्वार- सप्त वा नवशाखीय*

कपाटस्य स्वयमुद्घटितादिके फलम्-

**स्वयमपि च [1]कपाटोद्घाटनं वा पिधानं**
**भयदमधिकहीनं शाखयोर्वा विचालेः।**
**पुरुषयुवतिनाशः [2]स्तंभ शाखाविहीनं**
**भयदमखिलं काष्ठाग्रं यदाधः स्थितं स्यात्॥ ३७॥**

द्वार के कपाट यदि अपने आप खुले या बंद हो जाए, तो डर पैदा करते हैं। शाखाएं एक ओर सकड़ी व दूसरी ओर से चौड़ी हों तो भी भयदायक, बिना शाखा या स्तंभ का द्वार कुल की स्त्री या पुरुष का नाश करता है, द्वार बनाते समय उसमें काम में ली जा रही लकड़ी का मूल भाग नीचे तथा ऊपर का भाग ऊपर ही रखना चाहिए। इसके विपरीत किया जाए तो भी डर पैदा करते हैं।

*वराहमिहिर का कथन है- उन्मादः स्वयमुद्घटितेऽथ पिहिते स्वयं कुलविनाशः। मानाधिके नृपभयं दस्युभयं व्यसनमेव नीचे च॥ (बृहत्संहिता ५३, ७९)*

देवालयादि अवरोधे फलमाह-

**[3]देवालयं वा भवनं मठश्च भानोः करैर्वायुभिरेव भिन्नम्।**
**[4]तन्मूलभूमौ परिवर्जनीयं छाया गता [5]यस्य गृहस्य कूपे॥ ३८॥**

मंदिर, गृह, मठ आदि के प्रथम भाग में सूर्य की किरणों का आगमन न हो तथा हवा का संचार नहीं हो तो ऐसा आवास अशुभ होता है। जिस घर की छाया दूसरे या तीसरे प्रहर में पास के कुएं पर पड़ती हो, वहां रहना अनुचित है।

*ग्रंथांतर में कहा गया है कि स्तम्भ, मार्ग, मोड़, कोना, द्वार, कीचड़, वृक्ष, कूप*

---

१. 'कपाटाद्घाटनं' मिति प्रकाशितपाठे।
२. 'स्थंभ' तत्रैव।
३. 'देवालयो' तत्रैव।
४. 'तन्मूलभूतौ' तत्रैव।
५. 'तस्य' तत्रैव।

तथा देवता का गृह यदि द्वार के सम्मुख पड़ता हो तो वेध होता है। जिस गृह के खण्ड में सूर्योदय काल की किरणे और पवन नहीं आए, वह अशुभ होता है। दि की दूसरे और तृतीय प्रहर की छाया कूप पर पड़ती हो वह भी शुभ नहीं माना ज स्तम्भमार्गभूमिकोणद्वारकर्दमभूरुहाम्। कूपदेवगृहाणां च वेधो द्वारेऽथ सम्मुखे॥

अत्रैव प्रासादेध्वजदण्डप्रमाणमाह प्रासादमण्डने-[१]

**प्रासाद पृथुमानेन दण्डो ज्येष्ठः प्रकीर्तितः।**
**मध्यो हीनो दशांशेन$_{११}$ पञ्चमांशेन$_{५}$ कन्यसः॥ ३९॥**

अब ध्वजदण्ड का मान दिया जा रहा है। प्रासाद की स्थूलता (व्यासमा समान ध्वजदण्ड की लम्बाई बनाई जाए तो उसे ज्येष्ठमान का ध्वजदण्ड कहा ग इस ध्वजदण्ड में से यदि दशमांश कम करें तो मध्यमान तथा पञ्चमांश कम क कनिष्ठमान का ध्वजदण्ड बनता है।

*यह मत अपराजितपृच्छा के अनुसार है। तुलनीय है- प्रासादपृथुमानेन ध्वज तु कारयेत्। मध्यमं दशमांशोनं कनिष्ठं चोनपञ्चमम्॥ मूलरेखाप्रमाणेन स्याद्दण्डसम्भवः। मध्यमं द्वादशांशोनं षडंशोनं कनिष्ठकम्॥ (१४४, ६-७)*

ध्वजदण्डस्यविस्तार:

**एकहस्ते$_{१}$ तु प्रासादे दण्डः पादोनमङ्गुलम्$_{।।।}$।**
**कुर्यादर्द्धाङ्गुला$_{॥-॥}$ वृद्धिर्यावत्पञ्चदशाहतम्$_{५०}$ ॥ ४०॥**

ध्वजदण्ड का विस्तार अथवा मोटाई किस मान से रखें, इस सम्बन्ध में गया है कि यदि एक हाथ विस्तार का प्रासाद हो तो ध्वजदण्ड का विस्तार पौन अ रखना चाहिए। इसके उपरान्त पचास हाथ पर्यंत प्रासाद का विस्तार होने तक प्र हाथ पर अर्द्ध-अर्द्ध अङ्गुल बढ़ोत्तरी करनी चाहिए।

*यह श्लोक अपराजित. से तुलनीय है- एकहस्ते तु प्रासादे दण्डं पादोनमङ्गु अर्द्धाङ्गुला भवेद्वृद्धि पञ्चाशद्धस्तकावधि॥ (तथैव ८ तथा ज्ञानप्रकाशदीपार्णव ९,*

---

१. प्रकाशितपाठेइत्यमनंतर उभयश्लोकस्य भ्रष्टपाठः अत एव सूत्रधारमण्डनस्य प्रासादमण्डनादि पाठे
'करद्वय शकशाच्च रुद्रहस्ता विधिक्रमात्।
देवालयस्य शिखरे कार्योदण्डो हि यत्नत्॥ ३८॥
षडांश दीर्घविस्तृति सूर्यांशे न तदर्धतः।
पींड न्यूनस्तु पार्श्वऽर्ध चंद्र-घट-किङ्कणियुतम्॥ ३९॥' मिति प्रकाशितपाठे।



ड्प्रकार:

**सुवृत्तः सारदारुश्च ग्रन्थि-कोटर वर्जितः।**
**पर्वभिर्विषमैः कार्यः समग्रन्थिः सुखावहा॥ ४१॥**

दण्ड निर्माण के लिए ऐसे सुदृढ़ काष्ठ, सारद्रुम की लकड़ी का प्रयोग करना हिए जो प्राकृतिक गाँठ से रहित हो, जिसमें कोटर (अथवा काँटे या खोखलपन?) हो। उसे स्पष्ट वृत्ताकार बनाएं और उस पर पर्व या विभाग को विषम संख्या में रखें ग्रंथियों को समसंख्या में उत्कीर्ण करें।

*यह मत भी भुवनदेवाचार्य से तुलनीय है- पृथुत्वं च प्रकर्त्तव्यं सुवृत्तं पर्वकान्वितम्। दिपर्वतः कार्यः पञ्चविंशतिकावधि॥ विषमपर्वोद्गमाश्च शस्ताः स्वस्वाभिधानतः। दश स्युर्दण्डा वै पर्वभेदैस्तथोत्तमाः॥ जयन्तः शत्रुमर्दनः पिङ्गलो नाम सम्भवः। मुखश्च तथानन्दस्त्रिदेवो दिव्यशेखरः॥ कालदण्डो महाकूटः सूर्याख्यः कमलोद्भवः। कर्मा समाख्याताः कर्त्तव्याः सर्वकामदाः॥ जयन्तस्त्वेकपर्वश्च त्रिपर्वः शत्रुमर्दनः। लः पञ्चपर्वश्च सप्तपर्वश्च सम्भवः॥ श्रीमुखो नवपर्वश्च आनन्दो रुद्रपर्वकः। त्रिदेवो पर्वश्च तिभिर्दिव्यशेखरः॥ मुनीन्दुभिः कालदण्डो महोत्कटो नवेन्दुतः। र्याख्यस्त्वेकविंशत्या कमलो वह्निनेत्रतः॥ तत्पर्वो विश्वकर्मा दण्डनामानि पर्वतः। स्ताशस्तत्वमेतेषामभिधानगुणोद्भवम्॥ (वही ९-१०)*

*भुवनदेवाचार्य ने वंशलक्षण इस प्रकार बताए हैं- वंशमयस्तु कर्त्तव्यः रदारुसमन्वितः। निर्व्रणः सुदृढः कार्यो ज्वालादोषविवर्जितः॥ समग्रन्थिर्विधातव्यो षमपर्वसमन्वितः। (वही, २१-२२ तुलनीय-दीपार्णव वही १६ एवं १७)*

ण्डस्यमर्कट्यानि-

**दण्डदीर्घ षडंशेन$_{६}$ मर्कट्यर्द्धेन विस्तृता।**
**अर्द्धचन्द्राकृतिः पार्श्वे घण्टे द्वे$_{२}$ कलशस्तथा॥ ४२॥**

ध्वजदण्ड की लम्बाई का षष्ठभाग उसकी मर्कटी या पाटली का मान रखना चाहिए। (परंपरा रही है कि विस्तार का तृतीयांश मर्कटी की मोटाई रखनी चाहिए) र्कटी का सम्मुख भाग अर्द्ध चन्द्राकृति तुल्य रखें और पार्श्व में दो घण्टियां लगाएं और पर कलश का निर्माण करें।

*अपराजितपृच्छा में मर्कटी को मण्डूकी कहा गया है। मण्डन का मत अपराजित. के निकट है- मण्डूकी तस्य कर्त्तव्या अर्धचन्द्राकृतिस्तथा। पृथुदण्डसप्तगुणा हस्तादि*

Scanned with CamScanner

पञ्चकावधि॥ षड्गुणा च द्वादशान्तं शेषाः पञ्चगुणास्तथा। तथा त्रिभागविस्तारः सर्वकामदाः॥ अर्धचन्द्राकृति चैव पक्षे कुर्याद् गगारकम्। वंशोर्ध्वे कलशं घण्टाप्रलम्बनम्॥ चामरैर्भूषितं कुर्याद् घण्टा पक्षे विचक्षणः। पताका पा शत्रुपक्षक्षयंकरी॥ (वही १७-२०)

अथ ध्वजमानम्-

**ध्वजा दण्डप्रमाणेन दैर्घ्येऽष्टांशेन॒ विस्तरे।**
**नानावस्त्रैर्विचित्राद्यैस्त्रि॒पञ्चाग्र॒ शिखोत्तमा॥ ४३॥**

ध्वजादण्ड की लम्बाई के प्रमाण से ध्वजा की लम्बाई रखनी चाहिए की चौड़ाई उसकी लम्बाई का अष्टांश रखनी चाहिए। ध्वजा को नाना प्रकार के विचित्र वस्त्रों से बनानी चाहिए। उसके आगे तीन या पाँच शिखाएँ बनानी चा

*अपराजितपृच्छा में ध्वजदण्डालङ्कार इस प्रकार बताया गया है- ध्वजादण्ड पताकां च प्रलम्बयेत्॥ पृथुत्वमष्टमांशेन त्रिशाखाग्रविभूषितम्। शिखाः पञ्च ध्वाजाग्रे च विचक्षणैः॥ दिव्यवस्त्रपताका च अर्धचन्द्रैश्च किङ्किणीः। ... घुर्घुरान्वितम्॥ रखाध त्रिभागोर्ध्वं सूत्रांशे पादवर्जितम्। ध्वजोत्रतिस्तु कर्तव्या नैर्ऋतेऽथवा॥ प्रासादपृष्ठदेशे तु प्रतिरथे च दक्षिणे। स्तम्भवेधस्तु कर्त्तव्यो भित्तेरष्ट (वही २२-२६)*

**इति श्रीवास्तुशास्त्रे शिल्पदीपक ग्रंथे व्ययांशकताराधिपत्योत्पत्तिनाडीवे गृहाणामुत्सङ्गद्वारखटकीस्थापनलक्षणम् नाम तृतीय प्रकरणम्॥ ३॥**



| नक्षत्र क्रम | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नक्षत्र | अश्विनी | भरणी | कृतिका | रोहिणी | मृगशिर | आर्द्रा | पुनर्वसु | पुष्य | अश्लेषा | मघा | पू.फाल्गुनी | उ.फाल्गुनी | हस्त |
| मूलराशि | १७ | ७ | २४ | १४ | ४ | २१ | ११ | १ | १८ | ८ | २५ | १५ | ५ |
| गण | देव | मनुष्य | राक्षस | मनुष्य | देव | मनुष्य | देव | देव | राक्षस | राक्षस | मनुष्य | मनुष्य | देव |
| चंद्र | उत्तर | उत्तर | पूर्व | पूर्व | पूर्व | पूर्व | पूर्व | पूर्व | पूर्व | दक्षिण | दक्षिण | दक्षिण | दक्षिण |
| राशि | मेष | मेष | मेष | वृषभ | वृषभ | मिथुन | मिथुन | कर्क | कर्क | सिंह | सिंह | सिंह | कन्या |
| राशि स्वामी | मङ्गल | मङ्गल | मङ्गल | शुक्र | शुक्र | बुध | बुध | सोम | सोम | सूर्य | सूर्य | सूर्य | बुध |
| व्ययांक | शांत | पौर | प्रद्योत | श्रीयानंद | मनोहर | श्रीवत्स | विभव | चिंतात्मक | शांत | पौर | प्रद्योत | श्रीयानंद | मनोहर |
| | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | १ | २ | ३ | ४ | ५ |
| नाडी | आद्य | मध्य | अंत्य | अंत्य | मध्य | आद्य | आद्य | मध्य | अंत्य | अंत्य | मध्य | आद्य | आद्य |
| नक्षत्रयोनि | अश्व | गज | अज | सर्प | सर्प | श्वान | बिलाव | अज | बिलाव | मूषक | मूषक | गाय | महिष |
| योनि वैर | महिष | सिंह | मर्कट | नकुल | नकुल | वानर | मूषक | मर्कट | मूषक | बिलाव | बिलाव | बाघ | अश्व |
| नक्षत्र वैर | उ.फाल्गुनी | स्वाती | - | उत्तराषाढ | - | - | श्रवण | अश्लेषा | पुष्य | - | - | अश्विनी | चित्रा |
| नक्षत्रोत्पत्ति | ५ | ४ | ३ | २ | १ | ५ | ४ | ३ | २ | १ | ५ | ४ | ३ |

Scanned with CamScanner

| नक्षत्र क्रम | १४ | १५ | १६ | १७ | १८ | १९ | २० | २१ | २२ | २३ | २४ | २५ | २६ | २७ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नक्षत्र | चित्रा | स्वाती | विशाखा | अनुराधा | ज्येष्ठा | मूल | पू.षाढ | उ.षाढ | श्रवण | धनिष्ठा | शतभिषा | पू.भा | उ.भा | रेवती |
| मूलराशि | २२ | १२ | २ | १९ | ९ | २६ | १६ | ६ | २३ | १३ | ३ | २० | १० | २७ |
| गण | राक्षस | देव | राक्षस | देव | राक्षस | राक्षस | मनुष्य | मनुष्य | देव | राक्षस | राक्षस | मनुष्य | मनुष्य | देव |
| चंद्र | दक्षिण | दक्षिण | दक्षिण | पश्चिम | पश्चिम | पश्चिम | पश्चिम | पश्चिम | पश्चिम | उत्तर | उत्तर | उत्तर | उत्तर | उत्तर |
| राशि | कन्या | तुला | तुला | वृश्चिक | वृश्चिक | धन | धन | धन | मकर | मकर | कुंभ | कुंभ | मीन | मीन |
| राशि स्वामी | बुध | शुक्र | शुक्र | मङ्गल | मङ्गल | गुरु | गुरु | गुरु | शनि | शनि | शनि | शनि | गुरु | गुरु |
| व्ययांक | श्रीवत्स | विभव | चिंतात्मक | शांत | पौर | प्रद्योत | श्रीयानंद | मनोहर | वत्स | विभव | चिंतात्मक | शांत | पौर | प्रद्योत |
| | ६ | ७ | ८ | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | १ | २ | ३ |
| नाडी | मध्य | अंत्य | अंत्य | मध्य | आद्य | आद्य | मध्य | अंत्य | अंत्य | मध्य | आद्य | आद्य | मध्य | अंत्य |
| नक्षत्रयोनि | बाघ | महिष | बाघ | मृग | मृग | श्वान | कपि | नकुल | कपि | सिंह | अश्व | सिंह | गाय | गज |
| योनि वैर | गाय | अश्व | गाय | सिंह | सिंह | कपि | श्वान | सर्प | श्वान | गाय | महिष | गज | बाघ | सिंह |
| नक्षत्र वैर | हस्त | भरणी | ज्येष्ठा | - | विशाखा | - | - | रोहिणी | पुनर्वसु | - | - | - | - | |

# चतुर्थ प्रकरणम्

## निर्दोषवास्तुलक्षणम्

अत्रैव वास्तुदोषादीनां-

**थरभङ्गो यदा यस्य कोपितास्तत्र देवताः।**
**शिल्पिनश्च क्षयं यान्ति तद्भवेत् स्वामिमृत्युदम्[1] ॥ १ ॥**

अब वास्तुदोषों पर विचार किया जा रहा है। यदि निर्माणकार्य के चलते प्रासाद या ईंटों के गृह का थर भंग हो जाए या ऊँचे-नीचे थर हो जाते हों तो वहाँ विराजमान देवता कुपित होते हैं, देवकोप से शिल्पी का क्षय होता है और गृहस्वामी की मृत्यु हो जाती है, ऐसा समझना चाहिए।

*वराहमिहिर का कथन है कि सूत्रच्छेदे मृत्युः कीले चावाङ्मुखी महान् रोगः। गृहनाथस्थपतीनां स्मृतिलोपे मृत्युरादेश्यः॥ (बृहत्संहिता ५३, ११०)*

द्वारस्थापनविधिः

**मध्ये न स्थापयेद् द्वारं गर्भ नैव परित्यजेत्।**
**किञ्चिन्मात्रे तथेशानं द्वारं स्थापयेद्बुधः[2] ॥ २ ॥**

गृह के मध्यभाग में द्वार नहीं रखें और गर्भ स्थान को भी त्यागना देना चाहिए। द्वार किंचित ईशानकोण में अधिक हो और गर्भ स्थान से दाँयीं ओर का अंश किंचित लघु रखें। इस प्रकार द्वार की स्थापना करनी चाहिए।

गृहार्थद्वारविभाजनविधिः

**चतुर्विंशेशतोशाला( ? ) मध्यभागे चतुर्दश।**
**हयांतरे त्रिभागं स्यात् द्वौ द्वौ वामे च दक्षिणे ॥ ३ ॥**

---

१. 'थरभंगो यदा यस्य कुवडस्तत्र देवता। शिल्पिनां च क्षयां यांति तद्भवत् स्वामि मृत्युदं ॥ १ ॥' मिति प्रकाशितपाठे।
२. 'मध्ये न स्थापेयद्वारं गर्भ नैव परित्यजेत्। किंचिमात्रे च इशानं द्वार स्थापये ध्रुवं ॥' तत्रैव।

Scanned with CamScanner

शाला के चौबीस भाग करें। उसमें पाँच-पाँच बाँयीं और दाँयीं ओर र मध्य में चौदह भाग रखें जो इस प्रकार होंगे- गर्भ सहित सात भाग बाँयें और सा दाँयीं ओर। इसके बाद उक्त तथा दाँयें-बाँयें जो पाँच-पाँच भाग हैं, उसमें करा भाग रखकर घोड़ा एक भाग रखें, इस प्रकार दो ओर रखें।

पदभागेस्तम्भविधि:

**पञ्चभाग द्वयं कृत्वा सप्तभाग त्रयंस्तथा।**
**चत्वारो नवभागश्च शालादीनां प्रमाणत: ॥ ४॥**

यदि गृह के पद के पाँच भाग किए हों तो दो भाग मध्य में रखें और दो कराओं के पास डेढ़-डेढ़ भाग रखें और सात भाग पर किए हों तो दो ओर दो-दो रखकर मध्य में तीन भाग रखें। इसी प्रकार यदि नौ भाग पद के हों तो दो ओर ढाई भाग रखे और मध्य में तीन ( ?) भाग रखें, इस प्रकार यहाँ शालाओं के प्र कहे गए हैं।

स्तम्भस्थापनविधि:

**उच्छ्रयेनभिभुक्तै एकांशे पदकुम्भिके।**
**भागार्धं भरणं शीर्षमूर्ध्वस्तम्भ षडांशक: ॥ ५॥**

गृह के आङ्गन के भूमितल से छाद्य के शीर्ष तक के उदयमान के नौ भाग उसमें एक भाग की कुंभी करें। तदनन्तर स्तम्भ छह भाग का करें। उस पर आधे भ का द्वार करें। इसी प्रकार आधे भाग का शीर्ष या सरू रखें। एक भाग का पट्ट की क करें। इस प्रमाण से स्तम्भ का माप रखा जाना चाहिए।

अन्यदप्याह-

**उदुंबर समाकार्या कुम्भिका सर्वतो बुधं।**
**उभ्रंग्रहं( ?उभ्रं गृहं ) समश्रेष्ठमग्रो च सुखावह: ॥ ६॥**

द्वारशाखा की कुंभी देहरी के बराबर रखनी चाहिए। उक्त कुंभी के बराबर स कुंभियों के शीर्ष समसूत्र में रखें। गृह कक्ष में ऊँचा रखें। उससे पटशाल में नीचा रखे उससे बाहर बाहर शाला नीची और शाल से आगे आङ्गन की भूमि नीची हो, इस प्रक मान रखा जाए। यदि बाहर की भूमि ऊँची हो और गृह का भूतल नीचा हो- इस प्रक गृह के अंदर की भूमि दिखाई नहीं दे तो ऐसा गृह गृहपति के लिए कष्टदायी होता है इस प्रकार की गृह योजना त्याग देनी चाहिए।



*राजवल्लभ. में कहा गया है कि यदि गृह का आङ्गन मध्य में नीचा एवं चारों र से ऊँचा हो तो वह गृह पुत्रों का नाश करने वाला होता है। स्तम्भों की पङ्क्ति मध्य न से होनी चाहिए। मान से अधिक या हीन स्तम्भ न ही गृह स्वामी को यश प्रदान ते हैं न सम्पत्तिकारक होते हैं- मध्ये निम्नं प्राङ्गणाग्रं तथोच्चै: शश्वच्चैव पुत्रनाशाय म्। स्तम्भश्रेणी मध्यमानेन कार्या न्यूनाधिक्ये नैव पूजा न च श्री: ॥ (९, ४)*

दहीनकार्यफलमाह-

**पदहीनं न कर्तव्यं प्रासादं-मठ-मन्दिरम्।**
**एकस्तम्भ द्वयं कार्या पुत्र-पति-धनक्षयं ॥ ७॥**

किसी भी प्रासाद, मठ अथवा मन्दिर में कोई भी निर्माणकार्य पद से विहीन हीं किया जाना चाहिए। यदि दो गृह पास-पास हो तो उसमें बीच में एक स्तम्भ नहीं खें, यदि पदहीन या एक रखें तो वह गृह स्वामी के पुत्र, स्वयं की मृत्यु का कारण नता है या धनक्षय करवाता है। इसलिए दो कार्य में दो ही स्तम्भ रखे जाने चाहिए।

अन्यदप्याह-

**द्वारमध्ये गृहाणान्तु कोणमेकं न कारयेत्।**
**युग्मेषु च भवेच्छ्रेष्ठमेकैकं परिवर्जयेत् ॥ ८॥**

गृह के लिए द्वार मध्यभाग में ही रखें कर्ण के ऊपर नहीं रखें किंतु एक वास्तु के दो गृह हो तो गर्भ के कोने पर रखा जाना श्रेष्ठ होता है और यदि एक गृह के लिए क्त कोने का द्वार वर्जित होता है।

द्विगृहेमेकस्तम्भवर्जिते-

**द्वारमध्ये ग्रहणान्तु ह्येकस्तम्भ न कारयेत्।**
**युग्मेषु च भवेच्छ्रेष्टमेकैकं परिवर्जयेत् ॥ ९॥**

एक वास्तु के दो गृह हो परंतु उसके दो द्वार के बीच एक स्तम्भ नहीं रखा जाए परंतु दो के दो स्तम्भ रखें तो श्रेष्ठ, इसके विपरीत कार्य को त्याग दिया जाना चाहिए।

*राजवल्लभ. में कहा गया है कि यदि गृह कर्णमान से अधिक हो अथवा गृह का विस्तार अधिक हो तो वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। द्वार का शीर्षभाग अधिक झुका हुआ हो अथवा आगे निकला हुआ हो तो संतान की हानि होती है- कर्णाधिकं विस्तरतोऽधिकं वा शीघ्रं विनाशं समुपैति गेहम्। द्वारं नतं मूर्ध्नि यदाग्रजं चेत्तत् संततेर्हानिकरं प्रदिष्टम् ॥ (वही ९, ३७)*

Scanned with CamScanner

अत्रैव कपाटविचारः

**उत्तानां अर्थनाशायाऽधोमुखा व्याधिसाधकाः।**
**मिलिता व्याधिपीडायै विकर्णाश्च निहन्ति वै[१] ॥ १०॥**

द्वार के कपाट या किंवाड़ यदि अंदर के भाग में ऊपर से झुके हुए हों का नाश होता है, बाहर की ओर ऊपर से झुके हुए हों तो व्याधिकारक होते हैं बंध हो जाते हों तो व्याधि, पीड़ाकारक होते हैं तथा विकर्ण या टेढ़े-मेढ़े हों तो के विनाश का कारण बनते हैं।

अन्यदप्याह-

**स्वयंमुद्घ अश्वनाद पतिते मरण भवेत्।**
**कम्पतेन महारोगा द्विघटानां कुलक्षयं॥ ११॥**

यदि गृह के किंवाड़ स्वतः खुल जाते हों या खुलते समय अश्व जैसा ना गिरते हों तो गृहस्वामी का मरण जानना चाहिए। यदि कम्पन करते हो तो म कारक होते हैं और खुलते समय कठिनाई हो तो वहाँ बसने वाले के कुल का होता है।

*मत्स्यपुराण में कहा गया है कि जिस गृह केद्वार बिना हाथ लगाए ही खुल हों, उसके निवासियों को उन्माद का रोग हो जाता है और स्वयं बंद हो जाने प का विनाश होता है- स्वयमुद्धाटिते द्वारे उन्मादो गृहवासिनाम्। स्वयं वा पिहिते कुलनाशं विचक्षणः॥ (२५५, १५) इस सम्बन्ध में आगे मण्डन का मत भी दि*

दिङ्मूढफलमाह-

**दिङ्मूढेन करे वास्तु पुर-प्रासाद-मंदिरे।**
**अर्थनाशो क्षयं मृत्युं निर्वाणं( ?निवारणं ) नैव गच्छति॥ १२**

कभी दिशाहीन वास्तुकार्य नहीं करना चाहिए। पुर, प्रासाद और मन्दिर में दिङ्मूढ निर्माण कार्य हो तो कर्ता के अर्थ का नाश, क्षय, मृत्यु तक हो जाती है। प्रकार के निर्माण के दोष का निवारण किसी प्रकार से नहीं हो सकता है।

*मत्स्यपुराणकार का मत है- स्तम्भं वा भवनं वापि द्वारं वासगृहं तथा। दि कुलनाशः स्यात्र च संवर्धयेद् गृहम्। (अध्याय २५६, २८)*

---

१. 'उतानां अर्थनाशाय अधोमुखं व्याधिसाधकं, मिलितं व्याधिपीडा च विकर्णं च नहंति च।' मिति प्रकाशित



*मानसारकार का मत है कि समस्त आलयों में सभी अङ्गों को निर्धारित मान से न और अधिक नहीं बनाना चाहिए। यदि ऐसा होता है तो राजा, राष्ट्र व कर्त्ता को दोष गता है- आलयाद्यङ्गसर्वेषु हीनाधिक्यं भवेद्यदि। राजराष्ट्रादिकर्तृणां दोषप्राप्तिरिहोच्यते॥ अध्याय ३०, १)*

**दिशियो विदिशैश्चैव वास्तुमेध विशोधनं।**
**जीर्णान् वर्त्तिते वास्तु वेधे दोषो न विद्यते॥ १३॥**

नवीन वास्तु कार्य में निर्देशित वास्तु दिशा को छोड़कर विदिशाओं में निर्माण हीं किया जाना चाहिए। यदि ऐसा किया जाएगा तो दिशावेध कहा जाता है। यह निकारक होता है परन्तु जीर्णभवन हो तो उसको मूल वास्तु या पूर्वानुसार ही संपादित कया जाना चाहिए, इसमें दोष नहीं लगता है।

पूर्णबाहुगृहफलमाह समराङ्गणे-

**वास्तुप्रवेशतो यत् तु गृहं दक्षिणतो भवेत्।**
**प्रदक्षिणप्रवेशत्वात् तद् विद्यात् पूर्णबाहुकम्[१] ॥ १४॥**

ऐसा वास्तु जिसमें प्रवेश प्रदक्षिण या गृह के दक्षिण भाग से होता है, उसे पूर्णबाहु प्रवेश कहा जाता है।

तत्रैव-

**तत्र पुत्रांश्च पौत्रांश्च धनधान्यासुखानि च।**
**प्राप्नुवन्ति नरा नित्यं वसंतो वास्तुनि ध्रुवम्॥ १५॥**

पूर्णबाहु गृह में निवास करने वाले को पुत्र, पौत्रादि, धन-धान्यादि बहुत सा सुख मिलता है। ऐसे भवन में रहने से दिन-प्रतिदिन नाना सुख मिलते हैं, इसलिए ऐसे गृह में ही सदा निवास किया जाना चाहिए।

*यह मत समराङ्गणसूत्रधार का है जहाँ कहा गया है कि जहाँ पर वास्तु का द्वार गृह के सम्मुख होता है, उसको उत्सङ्ग कहते हैं, प्रदक्षिण या गृह के दक्षिणभाग से प्रवेश को पूर्णबाहु, बाँयें से हीनबाहु और पीछे से वास्तु-प्रवेश को प्रत्यक्षाय नाम दिया है- उत्सङ्गो हीनबाहुश्च पूर्णबाहुस्तथापरः। प्रत्यक्षायश्चतुर्थश्च निवेशः परिकीर्तितः॥ (३९, २) उत्सङ्ग नामक प्रवेश से संतानक्षय या धन-धान्य का विनाश अथवा निश्चय ही*

---

१. 'यदि प्रवेशतो वास्तु गृहं दक्षिणतो भवेत्। प्रदक्षिणा प्रवेश्यात् सिद्धिप्रतिपूर्णबाहुकं॥' मिति प्रकाशितपाठे।
२. 'तत्रापि पौत्राश्च योगाश्च धन धान्य सुखानि च। प्राप्नोति हि नरो नित्यं वसतां तत्र वास्तुके॥' तत्रैव।

Scanned with CamScanner

मृत्यु, पूर्णबाहु वास्तु में बसने वाले को पुत्र-पौत्र व नित्य धन-धान्य सुख मिल... हीनबाहु में सदा हीनता रहती है और प्रत्यक्षाय में धननाश निश्चित होता है।

निर्माणाकारनुसारेफलमाह-

**शू( सु ? )र्पाकारं पृष्ठो( प्रष्टो ? )धिकं विकर्णञ्च न कारयेत्।**
**करका कारापिकाश्चैव अचिरेण विनश्यति॥ १६॥**

गृह को शूर्पाकार या सूप के आकार वाला, पीछे से अधिक चौड़ाई वाला विकर्ण नहीं बनाना चाहिए। सूत्रधार या गृहपति को ऐसा गृह नहीं बनाना चाहिए। भवन दीर्घायु नहीं होते, वे शीघ्र ही नष्ट होने वाले होते हैं।

**कूडागारे गवाक्षादि मुखे च आलियस्तथा।**
**द्वारं स्तम्भतुला हीनं श्रेणिभङ्गं न कारयेत्॥ १७॥**

भवन में गवाक्ष, जालिका, आलियादि को रखा जाना चाहिए किंतु यह ध्या... रखें कि द्वार की स्तम्भतुला का मान या श्रेणीभङ्ग नहीं हो अर्थात् समसूत्र में रख... उचित होता है।

अत्रैव भूमौ विचारः-

**उपर्युपरि यद्वैश्म( यद्वस्म ? ) समं संकल्पयेत् क्वचित्।**
**समवेधं भवेत्तत्र समस्तं च कुलक्षयं॥ १८॥**

गृह में नीचे और ऊपर की भूमि या मंजिल समान भाग की नहीं रखनी चाहिए। यदि ऊपर की मंजिल को समान रखा जाता है तो समवेध होता है, यह वेध वहाँ... निवास करने वालों के समस्त कुल का विनाश कर देता है।

**उपर्युपरि भूमिस्तु द्वादशांश विवर्जिता।**
**प्रासादे सर्वतकार्या स्तंभस्तत्रानुरतका॥ १९॥**

गृह के उदयमान से ऊपर की भूमि का एक अंश कम रखना चाहिए। माप यह है कि अधोभवन के उदय के बारह अंश करें और उसमें से एक अंश कम करते हुए ऊपर की मंजिल को बनाएं। यह क्रम अन्य मंजिलों के लिए भी होगा। प्रासाद और अन्य समस्त कार्यों के लिए तदनुसार ही स्तम्भ का उदय रखना चाहिए।[1]

---

१. वराहमिहिरे-
विस्तारषोडशांशः सचतुर्हस्तो भवेद्गृहोच्छ्रायः।
द्वादशभागेनोनो भूमौ भूमौ समस्तानाम्॥ (५३, २२)



...थ अन्यान्य वेधादीनां-

**तलवेध तालवेधो द्वौविधौ यत्र इष्यते।**
**क्षियंते( ? ) तद्भवेद्वैस्म( भ ? ) क्षयंकारी च तद्गृह॥ २०॥**

तल वेध और ताल वेध- इस प्रकार यह वेध दो प्रकार का होता है, यह जिस गृह में होता है वह गृह क्षयकारी हो जाता है। भाव यह है कि स्तम्भ इस प्रकार रखें कि देहरी और उदुम्बर का वेध नहीं होना चाहिए, देहरी का शीर्ष और उतरङ्ग दोनों ही समसूत्र में होने चाहिए। यदि इसमें कोई ऊँचा-नीचा हो तो वेध होता है।

कुक्ष्यादिद्वारफलमाह-

**कुक्षौ द्वारं न कर्त्तव्यं पृष्ठे( प्रष्टे ? )द्वारं विवर्जयेत्।**
**पृष्ठे चैव भवेद्रोगी कुलक्षयश्च निर्दिशेत्॥ २१॥**

गृह के कुक्षीभाग पर द्वार नहीं रखें। इसी प्रकार पृष्ठभाग पर भी द्वार को त्याग देना चाहिए। पृष्ठ भाग के द्वार से गृहपति रोगी रहता है और कुक्षीद्वार से कुल का क्षय होता है, ऐसा जानना चाहिए।

**संवर्धनं च वास्तुनां तथा संवरणाति च।**
**प्रावर्त्तनं च यद्वाराणां सद्यः प्राणहरन्ति च॥ २२॥**

वास्तु का जब कभी संवर्द्धन किया जाए या संवरणा का विस्तार किया जाए तब यदि द्वार को बदला या दिशा परिवर्तन कर दिया जाए तो वह तत्काल प्राणहरण करने वाला हो जाता है।

**मानप्रमाण संयुक्तं शाला तत्रैव कारयेत्।**
**आयुराऽरोग्यं( आयुरांरोगं ? ) सौभाग्यं लभ्यते नात्र संशय॥ २३॥**

गृह मान के प्रमाणानुसार ही बनाया जाना चाहिए। मान प्रमाणानुसार ही बने गृह या आवास में रहने वाले पुरुष के आयुष्य की वृद्धि होती है, वह आरोग्य रहता है, सौभाग्य पाता है- इसमें कोई संशय नहीं जानना चाहिए।

वेध सदावर्जयेत्-

**समानसूत्रे शुभमग्रभित्तिः श्रेणीविभञ्जते सुत-वित्तनाशः।**
**गर्भस्य वेधे न सुखी कदाचित् स्वामि विभिन्नेन च दोषकारी॥ २४॥**

आवास की समस्त भित्तियाँ या दीवारों का अग्रभाग समसूत्र में रखा जाना चाहिए। किसी भी श्रेणी को विभाजित नहीं करें यह सुत और वित्त विनाश का हेतु

Scanned with CamScanner

माना गया है। यदि आवास में गर्भ वेध हो तो कदापि सुख नहीं मिलता, वह स्वा
लिए विभिन्न दोषों का कारक होता है। इसलिए कोई दोष नहीं रखना चाहिए।

**अलींदाश्चैवलिंदाश्च वामतंत्रा( नामस्तंत्रा ? )नुसारतः।**
**वाद्यद्वारं तु कर्तव्यं किञ्चिन्न्यून्यादिकं भवेत्॥ २५॥**

आवास के पार्श्व में जो कक्ष हो, उससे आगे के परशाल को न्यून र
चाहिए। इसी प्रकार परशाल से लघुपरशाल को न्यून रखे। ऐसे ही न्यून करते-
आगे के द्वार तक बढ़े, इसमें कितने ही अलिंद हो सकते हैं।

समूलंगृहाफलञ्च-

**कर्णाधिकं च हीनस्य यद्गृहं तद्रशं( ? ) भवेत्।**
**समूलं च तद्विजानियात हन्यते सुत-बांधवा॥ २६॥**

जिस गृह के कक्ष में कर्ण का मान अधिक या कम हो गया हो, तो उसे स
गृह कहा जाता है। ऐसे गृह में निवास करने वाले व्यक्ति के सुत और बंधुजनों
विनाश होता है।

प्रतिकारगृहफलमाह-

**पृष्ठे( प्रष्टे ? )वाह समं मृत्यु द्वारवास्तु यदा भवेत्।**
**प्रतिकार्यतन्नविद्यते निवेशतं न कारितं॥ २७॥**

गृह के पृष्ठ में द्वार हो या कक्ष के वहीं द्वार हो तो उसे प्रतिकार्य या प्रतिक
कहा जाता है, ऐसे गृह का निवेश नहीं करना चाहिए। ऐसे गृह में प्रवेश से परिणा
मृत्यु होती है।

युग्मगृहफलञ्च-

**युग्मगृहं( ग्रहं ? ) भवेत् तत्र वेदमध्येभित्तिस्थितं।**
**द्रव्यहानि भवेतव्यं मृत्युरेव न संशय॥ २८॥**

जब जुड़वां गृह बनाएं अथवा एक दीवार बनाकर एक गृह को दो गृह बना
जाएं तथा वह दीवार आगे के द्वार के मध्य में आती हो तो दोनों ही गृह द्रव्य की हानि
करने वाले हो जाते हैं या मृत्यु का कारण बनते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

१. तथा च मानसारे-
भित्तिश्रोण्यधिकं हीनं स्थाननाशं धनक्षयम्।
तत्रहीनाधिकं चेत्पादस्थानाद्धिकाश्रयम्॥ (६९, ३०)



अथांतकाख्यगृहफलञ्च-

**वामे ज्येष्ठे( जेष्ट ? ) भवेत्तत्र दक्षिणे च कनिष्ठकः।**
**अंतकाख्यं( आंतकांत ? ) भवेतद्वैश्म हन्यत कुलसंपदः॥ २९॥**

जिस गृह में बाँयां भाग विस्तृत हो जाए और दाँयां भाग कनिष्ठ हो जाए तो ऐसे
गृह को अंतक संज्ञक कहा गया है ये प्रायः कुल और सम्पदा का विनाश करने वाले
सिद्ध होते हैं।

अन्यदप्याह-

**सूचि( शुची ? )मुखं भवेच्छिद्रं पृष्ठे( प्रष्टे ? ) यदा करोति च।**
**प्रासादे न भवेत् पूजा गृहे क्री( क्रि ? )डन्ति राक्षसाः॥ ३०॥**

गृह के पृष्ठभाग में सूचीमुख या सुई जितना छिद्र भी नहीं रखना चाहिए। यदि
ऐसा किया जाए तो यदि वह मन्दिर हो तो पूजा नहीं होती और गृह है तो वहाँ पर राक्षस
ही रमण करते हैं।

**द्र( द्र ? )ष्टी रुद्रकरालं च भीषणारौद्रजानि च।**
**वर्जयेत् गृहश्चैव श्रेयोस्तत्र न विद्यते॥ ३१॥**

जिस गृह की दृष्टि डराने वाली या विकराल हो अथवा जिसे देखकर भय पैदा
होता हो, उसे तत्काल त्याग दिया जाना चाहिए। वहाँ पर कभी श्रेय की प्राप्ति नहीं होती
है, ऐसा जाने।

अथाप्रयोज्यप्रयोज्यम्-

**गृध्र( ग्रध्र ? )काककपोताश्च कपि( पति ? )संग्रामभीषणः।**
**पिशाचा राक्षसा क्रूरा गृहेषु परिवर्जयेत्॥ ३२॥**

सुंदर गृह वह है जहाँ पर गृध, काक, कपोत आदि क्रूर पक्षीगण, बंदर, भीषण
युद्ध के प्रसङ्ग, पिशाच, राक्षस आदि के चित्र नहीं हो, ऐसा चित्रण गृह में त्याग दिया
जाना चाहिए।

*इस प्रसङ्ग को धाराधिप भोजराज ने समराङ्गणसूत्रधार के अप्रयोज्यप्रयोज्यम् में
विशेष रूप से लिखा है।*

वास्तुभङ्गात्दोषः

**अचलं चालयेद्वास्तुं पुर-प्रासाद-मन्दिरम्।**
**पतितौ नरकघोरे च यावच्चन्द्र-दिवाकरम्॥ ३३॥**

Scanned with CamScanner

निर्माणकार्य सदैव अचल होना चाहिए। जीर्ण हुए या स्वतः गिरे नहीं, ऐसे प्रासाद या मन्दिर-वास्तु को जो कोई गिरा देता है, वह चंद्र-सूर्य की स्थिति तक नरक में निवास करता है।

**पदलोपं दिशालोपं गर्भलोपं तथैव च।**
**उभौ तौ नरकं यातः स्थापकः स्थपकः सदा[१] ॥ ३४ ॥**

प्रासाद में पदलोप, दिशालोप और गर्भलोप हो जाए तो प्रासाद निर्माण क वाले शिल्पी, निर्माता सदा-सर्वदा के लिए नरक में वास करते हैं, इसलिए इन निर्दे को ध्यान में रखते हुए निर्माण किया जाना चाहिए।

गुणदोषविचारमाह क्षीरार्णवे-

**गुणाश्च बहवो य( च )त्र दोषमेको( कं ? ) भवेद्यदि।**
**गुणाधिक्यं चाल्पदोषं कर्तव्यं नात्र संशयः ॥ ३५ ॥**

जिस वास्तु में पर्याप्त गुण हो और कदाचित एक दोष हो अथवा गुणों की अधिकता के साथ ही अल्पदोष रह गए हों तो उसे निदोष ही समझना चाहिए, इसमें संशय नहीं करें।[२]

अन्यदप्याह-

**पश्याभितोकर्ता( क्रता ? ) पूर्वो तस्मै नैव तथोपरे।**
**द्वारं द्वारस्य कथितं उपर्युपरि भूमिषु ॥ ३६ ॥**

जिस गृह में पूर्व में निर्मित दीवार को बाद में कितनी ही ऊँची करें और द्वार पर द्वार रखें, भूमि पर भूमि या मंजिल पर मंजिलें बनाएँ, किंतु उसमें कोई दोष नहीं माना जाता है।

**मानहीनं न कर्तव्यं मानधिकं न कारयेत्।**
**शिल्पिनां क्षयं यांति मानहीनं कृते गृहे ॥ ३७ ॥**

---

१. 'दिशिलोपं पदलोपं गर्भलोपं तथैव च। उभौ नर्के च यांति छान् पश्चापकौसंचनम् ॥' मिति प्रकाशितपाठे।
२. तथा च राजवल्लभे-
बहुगुणं लघुदोषसमन्वितं भवनदेवगृहादिकमिष्यते।
जललवेन शिखी बहुतापवान् न शममेति गुणैरधिको यतः ॥ (३, २७)
मानसारे-
प्रासादे मण्डपे तथावरुणादिदेशे साङ्गे च गोपुरपदे त्वपरेषु सर्वेषु।
दोषाधिकं यदि भवेत्त्वथवा गुणाधिकं तन्मर्त्यदेवनृपतिष्वपि तत्फलं स्यात् ॥ (६९, ३६)



किसी भी निर्माण कार्य को मान से विहीन बनाया जाना कर्तव्य नहीं है, मान से अधिक भी नहीं बनाना चाहिए। मानहीन गृह के निर्माण से शिल्पी का क्षय होता है।

*मानसारकार का कथन है कि त्रुटिवश भी हुए कार्यों से शिल्पी व निर्माता दरिद्रता को प्राप्त होता है- तस्मात्तु दोषसंप्राप्तिः शिल्पिदृष्टिभिर्वारयेत्। विस्तारे न्यूनं तस्मात्तु कर्तृदारिद्र्यमावहेत् ॥ तद्धयोधिकमानं चेद् दारानाशो भवेद् ध्रुवम्। आदितुङ्गविहीनं चेत्कर्तृव्याधिमतो विदुः ॥ तदेवाधिकमानं चेच्छत्रुवृद्धिर्न संशयः। अन्तर्जन्म बहिर्जन्म निम्नोन्नतया स्थितम् ॥ निर्वंशमेव तत्सर्वं कर्तृवंशं भवेद् ध्रुवम्। तज्जन्मदेशमार्गे च निम्नोन्नतमथापि वा ॥ (३०, ६-८)*

अथ कोणविचारः

**त्रिकोणं पञ्चकोणं च रथाकारं तथैव च।**
**वेधश्च नाडिरेखाणां तारायां वंशनाशकः[१] ॥ ३८ ॥**

यदि गृह त्रिकोण, पाँच कोणीय या रथाकार या पीछे से चौड़ा और आगे से संकड़ा हो तो वहां पर नाडी, रेखा और तारा का वेध होता है, ऐसे गृह में वंश का विनाश होता है।

अथ राहुविचारमाह-

**सन्मुखो राहु पृष्ठ( ष्ट ? )वो स्थापयेत् द्वार बुद्धिमान्।**
**सूर्याङ्गुल शलाकाद्य विस्तारङ्गुलमेव च[२] ॥ ३९ ॥**

यदि सन्मुख या पीछे राहु हो और ऐसे ही समय में द्वार लगाना आवश्यक ही हो तो बुद्धिमान शिल्पी को चाहिए कि वह द्वार के नीचे बारह अङ्गुल की लम्बी और एक अङ्गुल चौड़ी शलाका को रखकर कार्य को निरंतर रखना चाहिए।

**शलाका द्वय कोणस्या ताम्र शुद्धाय तत्र वै।**
**स्थापितं वदनं ( बु )द्धिमान् अंतरिक्ष प्रजायते ॥ ४० ॥**

उक्त शलाकाएँ शुद्ध ताम्बे की हो और दो होनी चाहिए। इन्हें द्वार के दोनों ही तलों पर रखनी चाहिए, बाद में द्वार रखना चाहिए। इस प्रकार के द्वार की विधि नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार का द्वार अंतरिक्ष संज्ञक कहा जाता है।

---

१. 'रेखातारा नाडिवेधो वंशछेदन करे विभुः' मिति प्रकाशितपाठे।
२. 'सूर्यांगुल शलाकाद्य विस्तारं गुलमेव च' तत्रैव।



Scanned with CamScanner

पूजादिनाविचारमाह-

**पुनः शुद्धि दिशाजाते [1]तिर्यङ्त्रृक्षेषु शोभने।**
**द्वारचक्रं शुभस्थाने बलिपूजा विधानकै ॥ ४१ ॥**

यह द्वार स्थायी नहीं करना चाहिए। जब राहू का मुख शुभ, अपेक्षित दि[शा] हो तब अच्छा मुहूर्त देखकर तीर्यङ्मुख नक्षत्र (ज्येष्ठा, पुनर्वसु, हस्त, अश्विनी, मृग[शिरा], रेवती, अनुराधा, स्वाती और चित्रा), शुभ दिनमान हो, तब उक्त ताम्र शलाका[ओं को] निकाल लें और द्वारचक्र में शुभाशुभ को देखकर बलि आदि से पूजा करते हुए द्वा[र] स्थापना करनी चाहिए।

विशेषोच्च-

**पादयेत् कुछ्रीतं( ? ) द्वारं भितिकास्थापयेत्तदा।**
**तत्र शिल्पीबुद्धिदौश्चैव इति द्वारस्थापनविधि ॥ ४२ ॥**

उक्त प्रसङ्ग में यह ज्ञातव्य है कि जिस दिन शलाका निकालनी हो, उस दि[न] बुद्धिमान शिल्पी को द्वार के ऊपर की कच्ची ईंटों को निकालकर शेषांश को ह[टा देना] चाहिए। इसके बाद ही शलाका को निकाल कर द्वार की स्थापना करनी चाहिए। [इस] प्रकार द्वार स्थापना की विधि कही गई है।

गवाक्षस्थापनमाह-

**पृष्ठे( ष्ठे ? ) गवाक्षं न कर्तव्यं वामाङ्ग परिवर्जयेत्।**
**अग्रतो च भवेच्छ्रेष्ट यजमानं सदाजयम्[2] ॥ ४३ ॥**

गृह के पृष्ठ भाग में कभी गवाक्ष या अवलोकन अथवा खिड़की नहीं रख[नी] चाहिए। इसी प्रकार बाँये भी वर्जित है। आगे के भाग में गवाक्षादि का निर्माण श्रेष्ठ मा[ना] गया है, यह यजमान को सदा जय प्रदान करता है।

अन्यदप्याह-

**यदा पृष्ठे( ष्ठं ? ) च ( न ) कर्तव्यमग्रत( वामाङ्ग ? ) परिवर्जयेत्।**
**तद्गृहमशुभं ज्ञेयं पुत्र-पति-धनक्षयं ॥ ४४ ॥**

जिस गृह में पीछे और बाँयीं ओर दरवाजा हो तो बहुत अशुभ माना जाता है।

---

१. 'तिर्यक्त्रृक्षेशुशीभने' मिति प्रकाशितपाठे।
२. 'पृष्ठे कार्यं गवाक्षं न वामाङ्गे परिवर्जयेत्, अग्रतश्च भवेच्छ्रेष्ठं जयमानौ च सर्वदा' मिति शिल्परत्नाको पञ्चमरत्ने १८७ श्लोकः।



उसमें निवास करने वाले स्वामी के पुत्र, स्वयं की मृत्यु होती है, धन का भी बहुत विनाश होता है।

द्वारतलं विशेष:

**द्वारसर्वेषु गेहानां तलमानं न लोपयेत्।**
**अग्रतो पृष्ठतश्चैव समसूत्रञ्च कारयेत्[1] ॥ ४५ ॥**

गृह में जितने भी द्वार रखने हो, उनमें सभी के लिए तलमान का लोप बिल्कुल नहीं करना चाहिए। उन्हें आगे और पीछे से समसूत्र में ही रखने चाहिए।

अन्यदप्याह-

**द्वारस्तंभगवाक्षं तु भङ्गकोणञ्च कोणयेत्।**
**मुखमंडपसंयुक्तं श्रेणीभङ्गो न कारयेत्[2] ॥ ४६ ॥**

गृह के द्वार का स्तम्भ और चौखट के द्वार का स्तम्भ इन दोनों का ही वेध नहीं होना चाहिए। भाव यह है कि इन दोनों द्वारों में बांक नहीं होनी चाहिए। उन्हें एक सूत्र में रखें और गृह का द्वार आगे का मण्डप और चौखट का द्वार इनकी श्रेणी भङ्ग भी नहीं करनी चाहिए।

अन्यदप्याह-

**भञ्जिता लोपिता येन( यंत ? ) ब्रह्मदोषो महाभयः( भवेत् ? )।**
**शिल्पिनो निष्कुलं यान्ति स्वामिसर्वधनक्षयं ॥ ४७ ॥**

यदि कदाचित शिल्पी गृह के पद को भङ्ग करें या दिशा को लोप करें या शिल्पी नासमझ हो और गृह में वेध रखता हो तो यह ब्रह्मदोष होता है और महाभय को करने वाला होता है, यह स्वामी के सर्वस्व और धन का क्षय करने वाला होता है।

अन्यदप्याह-

**स्तंभिकाकुंभिका सर्वतलमानं न लोपयेत्।**
**उदुम्बरशिरं सर्वं समसूत्रञ्च कारयेत्[3] ॥ ४८ ॥**

स्तम्भ और कुंभियों का तलमान कभी लोप नहीं करना चाहिए। उदुम्बर और उनके शीर्ष को भी समसूत्र में रखना चाहिए।

---

१. 'द्वार सर्वे गृहाणांतु तलामानं न लोपयेत। अग्रतो पृष्टीतश्चैव समसुत्रं च कारयेत् ॥' मिति प्रकाशितपाठे।
२. 'द्वार स्तम्भ गवाक्षंतु भजंकोणं च कोणयेत्। मुखं मंडपं समायुक्तं श्रेणीभंगं न कारयेत् ॥' तत्रैव।
३. 'स्थंभिका कुंभिका सर्व तलमानं न लोपयेत्। अग्रतुष्टी तथाश्चैव समसूत्रं च कारयेत ॥ ४८ ॥' तत्रैव।

Scanned with CamScanner

अन्यदप्याह-

**आशासं मंदिरं कृत्वा प्रजा राजा गृहं भवेत्।**
**छिद्रींपृष्ठी( छींद्रीपृष्टी ? ) न कर्तव्यं ध्रुवादि गृहषोडशः॥ ४९॥**

ध्रुवादि संज्ञक सभी सोलह गृहों का निर्माण राजा और प्रजा अपने सुख की आशा लिए करते हैं। इसलिए बुद्धिमान शिल्पी को गृह के लिए छिद्र, पृष्ठादि दोष को कदापि नहीं रखना चाहिए।

नलहीनगृहफलञ्च-

**नलहीनं तद् जानियात् स्वामिसर्वधनक्षयं।**
**विधिहीनं न कर्तव्यं सर्वदोषो विवर्जयेत्॥ ५०॥**

जो गृह पीछे की ओर कम हो और आगे से लम्बा हो तो वह नलहीन कहा जाता है। वहाँ पर निवास करें तो स्वामी का और धन का विनाश होता है।

अथ तत्वानुसारगृहायुष्यत्थाविनाशम् क्षीरार्णवे-

**गुणयेद्दष्टभिः क्षेत्रफलं षष्टिविभाजितम्।**
**लब्धं दशगुणं जीवंच्छेषं भूत समाहृतम्॥ ५१॥**
**पृथिव्यापस्तथातेजो वाययुराकाशमेव च।**
**पञ्चतत्वानि जानीयादंतकाले प्रभेदने॥ ५२॥**

गृह परिसर के कुल क्षेत्र को आठ से गुणा करें और साठ की संख्या से विभाजित करें, लो लब्ध हो, उसे दस से गुणा करने से जो अङ्क आता है, वहां तक उस वास्तु का आयुष्य जानना चाहिए अर्थात् उसकी काल स्थिति का ज्ञान होता है। साठ की संख्या से विभाजित करने से जो शेष उसे पाँच की संख्या से विभाजित करें, इससे तत्त्वों का ज्ञान होगा। इसे विनाश तत्व के रूप में जाने। यदि १ शेष बचें तो पृथ्वी तत्त्व, २ शेष रहे तो जल, ३ रहे तो तेज या अग्नि, ४ रहे तो वायु और ५ शेष रहे तो आकाश तत्त्व विनाश का कारण जानना चाहिए।

*श्रीपति की उक्ति है- उदये गुरुरस्तगृहे शशिजो बुधः सहजे तु शनिः। जलगश्च सितो भवनस्य तदा शरदां शतमायुरुशन्ति बुधाः॥ लग्ने भृगुः पुत्रगतश्च जीवः षष्ठे कुजस्तिग्मकरस्तृतीयाः। निवेशने यस्य गृहस्य तद्धि शतद्वयं तिष्ठति वत्सराणाम्॥ शशाङ्कजीवौ खरसातलस्थौ कुजार्कजौ लाभगतौ च यस्य। प्रारंभकाले भवनस्य यस्य स्थिति निरुक्ता शरदामशिति। (ज्योतिषरत्नमाला १७-२१ तथा २३-२४)*



**स्फुटार्थचक्र**

| | | |
|---|---|---|
| १. | भू तत्व | जीर्णता होकर पतन |
| २. | जल तत्व | पानी का भय |
| ३. | अग्नि तत्व | वह्नि भय |
| ४. | वायु तत्व | रोगग्रस्त होकर पतन |
| ५. | आकाश तत्व | पूर्णायु होकर पतन |

अत्र विशेषोच्च सच्छिल्पतंत्रे-

**फलं नागगुणं षष्ठ्या हृताल्लब्धं फलं भवेत्।**
**मृण्मये शर्करायुक्त गृहे जीवः सुनिश्चलः॥ ५३॥**

(सच्छिल्पतंत्र में वास्तुद्रव्य के अधिकार के अनुसार उसकी आयु बताई गई है) क्षेत्रफल को आठ से गुणा करें और साठ से भाग करने से जो अङ्क आए, उसे क्षेत्र का क्षेत्रफल कहा गया है। यह फल मिट्टी, कंकर युक्त गृह का स्थिर आयुष्य माना जाता है।

तत्रैव-

**तद्दशघ्नं भवेदायु रिष्टिकामृत्सधामनि।**
**चूर्णपाषाणजे त्रिंशद्घ्ने फले स्थितिरुत्तमा॥ ५४॥**

उक्त फल को दस गुणा करने करने से ईंट, मिट्टी से बने हुए वास्तु का आयुष्य जानना चाहिए। फल को तीस गुना करने से चूर्ण और पाषाण के गृह की उत्तम आयु स्थिति ज्ञात होती है।

तत्रैव-

**नवतिघ्ने फले नागैर्युक्ते पाषाणजे गृहे।**
**धातुजे भवनैऽभ्रादि लोचनघ्ने फले भवेत्॥ ५५॥**

इसी प्रकार यदि उक्त फल को ९० गुणा किया जाए तो नाग या सीसा, पीतल से युक्त पाषाण के गृह की आयु ज्ञात होती है। दो सौ सत्तर गुणा करने से लोहा, सोना, चांदी आदि धातु के बने गृहों, वास्तु आदि वस्तुओं की आयु निकल आती है।

**परायुः पञ्चधा प्रोक्तं शेषं भूतसमाहृतम्।**
**पृथिव्यापस्तथा प्रोक्तं वायुराकाशमेव च।**

Scanned with CamScanner

**इत्येतानि विजानीयात्तत्वानि सद्मनाशते ॥ ५६ ॥**

यह परम आयुष्य पाँच प्रकार का बताया गया है। लब्धाङ्क निकालने के बाद जो शेष रहे, उसे पाँच से भाग करते हुए शेष को अनुक्रम से १. पृथ्वी (धरती कंप) २. जल (जल प्रलय) ३. अग्नि ५. वायु (आंधी) और ५. आकाश (बिजली गिरने से) ऐसे पांच तत्वों से गृहादि का अंतकाल में विनाश जानना चाहिए।

अथ विवक्षितशालाध्रुवाङ्कानयनं पथ्यावक्राख्येनाह रामदैवज्ञे-

**दिक्षु पूर्वादितः शालाध्रुवा भूद्वौं( मुद्धौं ? ) कृता गजाः।**
**शालध्रुवाङ्क संयोगः सैको वेश्म ध्रुवादिकम् ॥ ५७ ॥**

पूर्वादिक दिशाओं में गृह का द्वार रहने से क्रम से १, २, ४ एवं ८ शालाध्रुवाङ्क होते हैं अर्थात् पूर्व में गृह का द्वार बनाना हो तो शालाध्रुवाङ्क १, दक्षिण द्वार वाले गृह का शालाध्रुवाङ्क २, पश्चिम में शालाध्रुवाङ्क ४ तथा उत्तर में शालाध्रुवाङ्क ८ होता है। जिस-जिस दिशा में द्वार बनाया जाना हो, उस दिशा के शालाध्रुवाङ्कों को जोड़कर उसमें १ मिला दिए जाने से जो अङ्क हो, वही ध्रुवादि संज्ञा उस गृह की होती है।

इसका उदाहरण सिंहाय के प्रसङ्ग में देखें कि यदि सिंहाय वाले गृह का पूर्व, दक्षिण और उत्तर तीनों दिशाओं में द्वार बनाया जाना हो तो क्रम से तीनों ही शालाध्रुवाङ्कों का योग करें, जो १+२+८=११ हुआ, इसमें १ जोड़ दिया जाए तो उस गृह की संज्ञा 'वित्तद' होती है।

अत्रैव विवक्षितध्रुवानयनमभिधायेदानीं ध्रुवादीनां नामाक्षरसङ्ख्यां-

**तिथ्य$_{१५}$ र्का$_{१२}$ ष्टा$_{८}$ ष्टि$_{१६}$ गो$_{९}$ रुद्र$_{११}$ शक्रे$_{१४}$ नामाक्षरं त्रयम्।**
**सु$_{१}$ द्वय$_{२}$ धीष्व$_{५}$ ङ्ग$_{६}$ दिग$_{१०}$ वह्नि$_{३}$ विश्वेषु$_{१३}$ द्वौ नगेऽब्धयः ॥ ५८ ॥**

यदि १५, १२, ८, १६, ९, ११ और १४- इन अङ्कों में से कोई संख्या घर की हो तो उसका नाम तीन अक्षर का होता है। इसी प्रकार १, २, ५, ६, १०, ३ या १३ अङ्कों में से कोई संख्या घर की आए तो उसका नाम दो अक्षरों वाला होता है।

अथ ध्रुवादिषोडशगृहाणां नामानि रामदैवज्ञे-

**ध्रुवधान्ये जयनंदो खरकांतमनोरमं सुमुखदुर्मुखोऽग्रं च।**
**रिपुदं वित्तदं नाशं चाक्रंदं विपुलविजयाख्यं स्यात् ॥ ५९ ॥**

१. ध्रुव २. धान्य ३. जय ४. नन्द ५. खर ६. कांत ७. मनोरम ८. सुमुख ९. दुर्मुख १०. उग्र ११. रिपुद १२. वित्तद १३. नाश १४. आक्रंद १५. विपुल और १६. विजय ये



गृहों की सोलह संज्ञाएँ हैं। इनमें खर, दुर्मुख, उग्र, रिपुद और आक्रंद संज्ञक गृह अशुभ माने गए हैं।

*मण्डन के मतानुसार ध्रुव, धान्य, जय, नंद, खर, कांत, मनोरम, सुवक्त्र, दुर्मुख, क्रूर, विपक्ष, धनद, क्षय, आक्रंद, वैपुल और विजय -ये षोडश तरह के गृह है। नाम के अनुरूप ही इनका फल भी है। इन घरों में द्वितीय धान्य से विजय तक एक गृह छोड़कर दूसरे के मुख के सामने एक-एक अलिंद बढ़ाया जाए तो उससे रम्यादिक आठ गृह बनते हैं- ध्रुवं च धान्यं जयनन्दसंज्ञे खराख्यकांते च मनोरमाख्यम्। सुवक्त्रं स्यात् किल दुर्मुखाख्यं क्रूरं विपक्षं धनद क्षयं च॥ आक्रन्दकं वैपुलवैजये च फलानि नाम्ना सदृशानि तेषाम्। (राजवल्लभ. ६, ४-५)*

*इन गृहों की एक दीवार दक्षिण, दूसरी उत्तर हो, पिछवाड़े पश्चिम तथा सृष्टि मार्ग प्रस्तार में जो लघु दिशा आए तथा उस मार्ग पर अलिंद आते हैं और उस तरह के षोडश प्रकार के भवन बताए गए हैं। चार गुरु को चार चिह्न प्रथम रूप में करने के दूसरे रूप में आद्य के गुरु के नीचे लघु चिह्न रखने से उसका दूसरा रूप हो जाता है। इस तरह गुरु के बदलते हुए गृहों के षोडश रूप बनते जाते हैं- चत्वारो गुरवस्तु पूर्वगुरुतोऽधो ह्रस्वतोऽन्ये समाः भूयः पश्चिमपूरितं च गुरुभिर्यावल्लघुत्वं भवेत्। उद्दिष्टे द्विगुणाङ्ककैर्लघुभवैः संख्यैकमिश्रीकृते नष्टे स्तो विषमे समे गुरुलघु रूपे तदर्द्धार्द्धितः॥ स्थाने लघोः सद्ममुखादलिन्दं प्रदक्षिणान्तं क्रमतो विदध्यात्। प्रस्तारतः षोडशकं गृहाणां प्रोक्तं तथाख्यां कथयामि तेषाम्॥ (वही, ६, २-३)*

*वृद्धवशिष्ठ ने इन गृहों का फलाफल इस प्रकार बताया है- ध्रुवसंज्ञं गृहं त्वाद्यं धनधान्यसुखप्रदम्। धान्यं धनप्रदं नृणां जयं स्याद्विजयप्रदम्॥ नन्दं स्त्रीहानिदं नूनं खरं सम्पद्विनाशनम्। पुत्रपौत्रप्रदं कान्तं श्रीपदं स्यान्मनोरम्॥ सुवक्त्रं भोगदं नूनं दुर्मुखं विमुखप्रदम्। सर्वदुःखप्रदं क्रूरं विपक्षं शत्रुभीतिदम्॥ धनदं धनदं गेहं क्षयं सर्वक्षयप्रदम्। आक्रंदं शोकजननं विपुलं श्रीयशःप्रदम्। विपुलं नामसदृशं धनदं विजयाभिधम्॥ (वशिष्ठसंहिता ३९, १००-१०३ एवं पीयूषधारा टीका में १२, १० पर उद्धृत )*

*श्रीपति ने इसके लिए प्रस्तारक्रम बताया है। भवन के लिए छंद शास्त्रानुसार प्रस्तारक्रम समझना चाहिए। इसके लिए पहले चार गुरु (SSSS) लिखें, तदोपरांत प्रथम गुरु के नीचे लघु लिखें और वाम भाग में गुरु लिखें तथा आगे जैसा पूर्व में लिखा गया है, वैसा ही लिखें (ISSS)। इसी प्रकार सबके लघु (IIII) होने तक लिखें तो*

प्रस्तारक्रम तय हो जाता है- स्थापयेल्लघुमघो गुरोः परं स्याद्यथोपरि तथैव पु[illegible] पश्चिमं च गुरुभिः पुनः पुनः सर्वलघ्ववधिरित्ययं विधिः॥ (पूर्वोद्धत १७, ९)

**गृहार्थ प्रस्तारचक्र**

| सं. | प्रस्तारभेद | गृहनाम | द्वारनाम |
|---|---|---|---|
| १. | ऽऽऽऽ | ध्रुव | ऊर्ध्वमुख |
| २. | ।ऽऽऽ | धान्य | पूर्वमुख |
| ३. | ऽ।ऽऽ | जयसंज्ञक | दक्षिणद्वार |
| ४. | ।।ऽऽ | जयसंज्ञक | पूर्वदक्षिणद्वार |
| ५. | ऽऽ।ऽ | खराभिध | पश्चिमद्वार |
| ६. | ।ऽ।ऽ | कान्त | पूर्वपश्चिमद्वार |
| ७. | ऽ।।ऽ | मनोरम | दक्षिणपश्चिमद्वार |
| ८. | ।।।ऽ | सुमुख | पूर्वयाम्यपश्चिमद्वार |
| ९. | ऽऽऽ। | दुर्मुख | उत्तरद्वार |
| १०. | ।ऽऽ। | उग्र | पूर्वोत्तरद्वार |
| ११. | ऽ।ऽ। | रिपुद | दक्षिणोत्तरद्वार |
| १२. | ।।ऽ। | वित्तद | पूर्वयाम्योत्तरद्वार |
| १३. | ऽऽ।। | नाशाख्य | पश्चिमोत्तरद्वार |
| १४. | ।ऽ।। | आक्रन्द | पूर्वपश्चिमत्तरद्वार |
| १५. | ऽ।।। | विपुल | याम्यपश्चिमोत्तरमुख |
| १६. | ।।।। | विजयसंज्ञक | चतुर्मुख |

इति श्रीवास्तुशास्त्रे शिल्पदीपक ग्रंथे निर्दोषवास्तुलक्षणम्
नाम चतुर्थ प्रकरणम्॥ ४॥

# पञ्चम प्रकरणम्

## राजगृहनिवेशादिलक्षणम्

अधुनाराजगृहाणां मानम्-

चक्रवर्तिनो गृहप्रमाणम्-

**अथो नृपाणां भवनानि वक्ष्ये चैकातपत्रावनिपालकस्य।**
**शतं च हस्ताष्टसमन्वितं च व्यासे गृहं चौत्तममेव तस्य॥ १॥**

अब चक्रवर्ती राजा के गृह के प्रमाण का वर्णन किया जाता है। एक चक्रवर्ती राजा के उत्तम गृह का व्यास एक सौ आठ हाथ का करना उत्तम होता है।

द्वापरदृष्टान्तपूर्वकं राजगृह प्रमाणम्-

**ये द्वापरे भूमिभुजो बभूवु( भवेयु?)**
**स्तेषां गृहं हस्तशतं द्विहीनम्।**
**तत् त्र्यंशभूमीश्वरको नृनाथस्त्वष्टा-**
**धिकाशीतिकरं गृहं स्यात्॥ २॥**

द्वापर युग में चक्रवर्ती राजाओं के महल ९८ हाथ व्यास के होते थे। चक्रवर्ती राजा की भूमि के एक तिहाई भाग के आधिपत्य वाले राजा नृनाथ कहे जाते हैं। उनके महल ८८ हाथ व्यास का विस्तार लिए होते हैं।

महामण्डलिकलक्षणम् तद्गृहमानञ्च-

**ग्रामैकलक्षद्वयमस्ति यस्य प्रोक्तो महामण्डलिको नरेन्द्रः।**
**अशीतिहस्तं द्विकरेण हीनं कुर्याद् गृहं शोभनमेव तस्य॥ ३॥**

इसी प्रकार जिस के पास एक या दो लाख ग्राम हो, उसे महामंडलिक कहा जाता है। ऐसे महामंडलिक राजा का गृह ७८ हाथ का बनाना चाहिए, यही उसके लिए शोभित होता है।

Scanned with CamScanner

नृपमाण्डलिकसामन्तोर्लक्षणं तद्गृहप्रमाणञ्च-

**पञ्चायुतेशो नृपमण्डलीको भवेद् गृहं तस्य कराष्टषष्टिः।**
**सामन्तमुख्यो द्व्ययुताधिपोऽसौ तद्गेहमष्टेषुकरप्रमाणम्॥ ४॥**

पचास हजार गाँव वाले राजा को नृपमंडलिक कहा जाता है। ऐसे राजा का गृह ६८ हाथ बनाया जाना चाहिए। इसी प्रकार २० हजार गाँव वाले सामंतमुख्य राजा के गृह का विस्तार ५८ हाथ व्यास रखना चाहिए।

**विविध गृहमान**

| क्रम | नृपसंज्ञा | विशेषता/कोटि | गृहप्रमाण |
|---|---|---|---|
| १. | चक्रवर्ती | (सर्वाधिपति) | १०८ हाथ व्यास |
| २. | नृनाथ | जिसके पास चक्रवर्ती राजा की भूमि या तृतीयांश हो | ८८ हाथ व्यास |
| ३. | महामण्डलिक | १ से २ लाख ग्रामों का अधिपति | ७८ हाथ व्यास |
| ४. | नृपमण्डलिक | ५० हजार ग्रामाधिपति | ६८ हाथ व्यास |
| ५. | सामंतमुख्य | २० हजार ग्रामाधिपति | ५८ हाथ व्यास |
| ६. | सामंत | १० हजार ग्रामाधिपति | ४८ हाथ व्यास |
| ७. | तृतीय (सामंत) | ५ हजार ग्रामाधिपति | ३८ हाथ व्यास |
| ८. | चतुराशिक | १ हजार ग्रामाधिपति | २८ हाथ व्यास |
| ९. | स्वल्पराष्ट्र/सैनिक | १०० ग्रामाधिपति | १८ हाथ व्यास |

सामन्तलक्षणम् तद्गृहप्रमाणञ्च-

**तद्वेश्म पञ्चाशदपि द्विहीनं**
**सामन्तसंज्ञोऽयुतनाथ एव।**
**तथा तृतीयोऽपि ततोऽर्द्धहीनस्त्रिंशत्**
**कराष्टाधिकमेव गेहम्॥ ५॥**

दस हजार गांवों के सामंत राजा का गृह ४८ हाथ तथा पाँच हजार गाँव के सामंत का गृहमान ३२ हाथ व्यास रखना चाहिए।



चतुराशिकलक्षणम् तद्गृहप्रमाणञ्च-

**प्रोक्तः प्रवीणैश्चतुराशिकोऽसौ**
**ग्रामा हि यस्यैव सहस्त्रमेकम्।**
**अष्टाधिकं विंशतिहस्तहर्म्यं**
**सिद्ध्यै समस्तानि यथोदितानि॥ ६॥**

जिस राजा के पास एक हजार गाँव हो वह चतुराशिक कहा जाता है तथा उसका गृह २८ हाथ का होना चाहिए। ऐसा करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत करने पर हानि की संभावना रहती है।

स्वल्पराष्ट्रलक्षणं तद्धर्म्यमानञ्च-

**ग्रामाधिपा ये तु शताधिपाश्च ते स्वल्पराष्ट्रा अपसैनिकाश्च।**
**तेषां गृहा अष्टदशाधिकैश्च करैः समाना मुनिनिर्मिताश्च॥ ७॥**

सौ गांवों के मालिक को स्वल्पदेश एवं सैनिक कहा जाता है। ऐसे स्वल्पदेश या सैनिक के गृह का मान १८ हाथ व्यास होना चाहिए।

मन्त्रिगेहमानम्-

**भूपालयार्द्धेन च मन्त्रिगेहं यथाधिकारेण भवन्ति हीनम्।**
**व्यासाद्दशांशाधिकमेव दैर्घ्यं कुर्यादथः पञ्चमभागमिष्टम्॥ ८॥**

राजा के गृह से मंत्री का गृह आधा तथा उससे नीचे के अधिकारियों के गृह भी उसी क्रम में आधे भाग पर बनाने चाहिए। गृह की जितनी चौड़ाई हो उसका दशांश भाग लंबाई में अधिक होना चाहिए।

**वर्णानुसार गृह विस्तार**

| वर्ण | ब्राह्मण | क्षत्रिय | वैश्य | शूद्र | अन्त्यज |
|---|---|---|---|---|---|
| विस्तार (हाथ) | ३२ | २८ | २४ | २० | १६ |
| दीर्घ (हाथ) | ३५.४ | ३१.१२ | २६ | २२ | १७ |

साधारणमनुष्याणाम् गृहं-

**गृहं चतुर्हस्तमितं करादिवृद्ध्या द्विरामान्तमिति प्रमाणम्।**
**ततः परं भूपतिमन्दिराणि यावच्छतं चाष्टकराभिर्युक्तम्॥ ९॥**

Scanned with CamScanner

चार हाथ से लेकर ३२ हाथ विस्तार तक जन साधारण का गृह होना चाहि उससे अधिक १०८ हाथ व्यास का गृह राजा का बनाएं। इसे भूपति मंदिर कहते हैं

एकादिभूमिकप्रमाणम्–

**स्याद् भूमिरेका वस्तुहस्तगेहे**
**दशाभिवृद्ध्या द्वि ( ती ? ) तीया पुनश्च।**
**प्रासाद एवामरभूपयोश्च**
**हर्म्याणि लोके मुनिनोदितानि॥ १०॥**

मुनियों ने कहा कि आठ हाथ के गृह में एक तल तथा १८ हाथ के गृह को मंजिला बनाया जा सकता है। देव या राजा का प्रासाद तथा जनसाधारण के घर को मुनियों के मतानुसार हर्म्य कहा जाता है।

भित्त्योप्रमाणम्–

**शालाया नवधा च पञ्चकरतो मानं च विश्रान्तकं**
**भित्तेरेव चतुर्दशाङ्गुलमितिर्यावत् सपादं करम्।**
**आगारस्य तु षोडशांशसहितोऽप्यर्द्धेन हीनोऽथवा**
**भित्तेर्मानमिदं त्रिधा विरचितं कल्पयं योग्यतानुसारे॥ ११॥**

शालाएं नौ प्रकार की होती हैं। ये पांच से तेरह हाथ तक होती हैं। शाला की दीवारें १४ अङ्गुल से सवा हाथ तक चौड़ी हो, यदि ऐसा संभव नहीं हो तो घर के मा का साढ़े सोलहवां भाग या अर्द्ध अंश कम चौड़ाई की भित्ति बनाई जा सकती है।

उत्तमादिवर्गेनेष्टिकाबाह्यभित्त्योः

**दैर्घ्ये शशिकलाङ्गुलोत्तमशिला मध्याङ्गुलो नान्तिमा**
**व्यासो दिग्नवभूभृदुच्छ्रितिरपि त्र्यंशेन विस्तारतः।**
**हस्तादेस्त्रिकरोदयं नवविधं पीठं गृहे सर्वतो**
**विप्रादे रसभूतवेदगुणकाः स्युः पीठके मेखलाः॥ १२॥**

जो शिला १६ अङ्गुल लंबी हो उसे उत्तम शिला, १६ अङ्गुल लंबी को मध्यम, १४ अङ्गुल को कनिष्ठ शिला कहा जाता है। उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ शिला की चौड़ाई क्रमशः १०, ९ व ७ अङ्गुल होती है। उक्त शिला की जो चौड़ाई बताई गई है, उसका तृतीयांश ऊँचाई होनी चाहिए। गृह में चारों ओर पीठिका होती है जो एक से तीन हाथ तक नौ प्रकार की हो सकती है। इन पर मेखला का निर्माण करना चाहिए।



**शिलाओं का मान**

| क्रम | शिला | लंबाई | चौड़ाई | ऊंचाई |
|---|---|---|---|---|
| १. | उत्तम | १६ | १० | ३$\frac{१}{२}$ |
| २. | मध्यम | १५ | ९ | ३ |
| ३. | कनिष्ठ | १४ | ७ | २$\frac{१}{२}$ |

द्वारविचारः

**षष्ट्या वाऽथ शतार्द्धसप्ततियुतैर्व्यासस्य हस्ताङ्गुलै–**
**द्वारस्योदयको भवेच्च भवने मध्यः कनिष्ठात्तमौ।**
**दैर्घ्यार्द्धेन च विस्तरः शशिकला भागेऽधिकं शिष्यते**
**दैर्घ्यं त्र्यंशविहीनमर्द्धरहितं मध्यं कनिष्ठं क्रमात्॥ १३॥**

गृह की चौड़ाई जितने हाथ हो उतने ही अङ्गुल में ६० अङ्गुल और जोड़ने पर जो नाप आए, उसी के अनुरूप द्वार की ऊँचाई रखनी चाहिए, ऐसी ऊँचाई 'मध्यमा' कही जाती है। गृह की चौड़ाई जितने अङ्गुल में ५० अङ्गुल और जोड़ने से प्राप्त ऊँचाई वाला द्वार कनिष्ठ मान तथा जितने गज चौड़ाई हो उतने अङ्गुल में ७० अङ्गुल जोड़ने से बने द्वार को उत्तम, ज्येष्ठ द्वार कहा जाता है। इसी तरह द्वार की चौड़ाई के बारे में द्वार की ऊँचाई का आधा तथा १६वां भाग जोड़ने में जो माप आए, वैसा द्वार बनाना श्रेष्ठ है। द्वार की ऊँचाई के तीन भागों में से दो भाग के समान चौड़ाई वाला बनाया जाए तो उसे मध्यम द्वार कहा जाता है तथा बिल्कुल आधे भाग बराबर की चौड़ाई वाले द्वार को कनिष्ठ कहा जाता है।

**द्वार का मान**

| क्रम | द्वार संज्ञा | निर्माण विधि |
|---|---|---|
| १. | उत्तम | गृह विस्तार तुल्य हस्ताङ्गुल+७० अङ्गुल |
| २. | मध्यम | गृह विस्तार तुल्य हस्ताङ्गुल+ ६० अङ्गुल |
| ३. | कनिष्ठ | गृह विस्तार तुल्य हस्ताङ्गुल+ ५० अङ्गुल |

प्रतोल्यादिबहिर्द्वारं–

**ज्येष्ठा प्रतोली तिथिहस्तसंख्या**
**प्रोक्तोदये विश्वकरा च मध्या।**

Scanned with CamScanner

**कनिष्ठिका रुद्रकरा क्रमेण**
**व्यासेऽष्ट सप्तैव च रागसंख्या॥ १४॥**

जिस मुख्य या सदर दरवाजे की ऊंचाई १५ हाथ हो वह ज्येष्ठमान, १३ हाथ हो वह मध्यमान, ११ हाथ हो वह कनिष्ठमान कहा जाता है, लेकिन व्यास भी क्रमशः आठ हाथ, सात व छह हाथ अनिवार्य है।

**गेहोदयन्तु विभजेन्नवधा षडंशः**
**स्तम्भोऽर्द्धभागसमकं भरणं शिरश्च**
**कुम्भी ह्युदुम्बरसमैकविभागतुल्या**
**पट्टश्च तन्त्रक युतांऽश समान एव॥ १५॥**

गृह के तल से छत तक की ऊँचाई के नौ भाग करने के बाद उसमें से छठे भाग तक स्तंभ रखना चाहिए। स्तंभ के ऊर्ध्व भाग में आधे भाग के समान आभरण बनाएं, आधे ही भाग का शीर्ष होना चाहिए, एक भाग की कुंभी तथा उसके बराबर भाग का उदुम्बर व पट्ट इत्यादि बनाना चाहिए।

दीपस्थानम्-

**दीपालयो दक्षिणदिग्विभागे**
**सदा विधेयोऽर्गलया समानः।**
**वामे च मध्ये न शुभञ्च गेहे**
**सुरालये वामदिशासु सिद्धयै॥ १६॥**

दीपक रखने का आलय मकान के दाईं ओर रखें। इस आलय की ऊंचाई द्वार के लिए रखी अर्गला के बराबर अथवा दोनों को सीधी रेखा में होना चाहिए। दीपक का स्थान कभी घर के बाईं ओर अन्य भाग या मध्य भाग में नहीं होना चाहिए, लेकिन देवमंदिर में बाईं ओर दीपालय होना श्रेष्ठ है।

द्वारस्थापनविचारः

**द्वाराग्रे खटकीमुखं च तदधो द्वाःषोडशांशाधिकं**
**सर्वं द्वाःशुभमिच्छता च सततं कार्यं तु पट्टादधः।**
**तन्त्रयूनं न शुभं तुलातुलगतं कुक्षौ तथा पृष्ठजं**
**काष्ठं पञ्चक एवं नीतिमहितं यन्मूलपूर्वोत्तरम्॥ १७॥**

यदि द्वार के पास खिड़की बनानी हो तो द्वार की ऊँचाई के १६वें हिस्से को



भी खिड़की की ऊँचाई में योग करने के बाद जो माप हो उस माप की बनाए। खिड़की की ऊँचाई बढ़ाने के लिए ऊपर की ओर कुछ नहीं करना, बल्कि नीचे की ओर ही होना चाहिए, जिससे कि द्वार व खिड़की दोनों की ओर एक ही सीध में हो, लेकिन द्वार के उदुंबरों से खिड़की के उदुंबर नीचे रखे जाते हैं। इसके लिए नीचे की ओर १६वां भाग बढ़ाना चाहिए, फिर भी द्वार के उदुंबर से खिड़की का उदुंबर नीचा ही होना चाहिए। अपना शुभ चाहने वाले मनुष्यों को कभी भी घर के द्वार को पाट से नीचे ही रखने चाहिए अर्थात् पाट के तल से किसी भी हालत में ऊंचा नहीं होना चाहिए। इसी तरह मुख्यशाला के द्वार की ऊँचाई से दूसरी सभी द्वारों का नीचे का नीचे ही रखना चाहिए। इसी तरह कुक्षी व पीछे के भाग में एक जैसे दरवाजे रखने चाहिए। इमारती लकड़ी कभी भी पञ्चक में नहीं लानी चाहिए तथा लकड़ी का ढेर भी घर में पूर्व या उत्तर दिशा में नहीं रखना चाहिए।

**द्वारोर्ध्वे यद् द्वारमस्य प्रमाणं सङ्कीर्णं**
**वा शोभनं नाधिकं तत्।**
**ह्रस्वद्वाराण्येव यानि पृथूनि तेषां**
**शीर्षाण्येकसूत्राणि कुर्यात्॥ १८॥**

यदि गृह के द्वार के ऊपर द्वार रखना हो तो ऊपर वाले को नीचे वाले की बनिस्पत छोटा बनाना चाहिए। नीचे के द्वार से ऊपर का द्वार संकड़ा होने के साथ ही उससे ऊँचाई में भी ज्यादा नहीं होना चाहिए। छोटे-बड़े सभी द्वारों के शीर्षभाग को समसूत्र में रखा जाना आवश्यक है।

**सर्वं द्वारं चीयमानं रुजायै यद्वा**
**ह्रस्वं तत्करोत्यर्थनाशम्।**
**गेहाद्यं यत् पूर्ववास्तुस्वरूपं**
**तेषां भङ्गान्नैव सौख्यं कदाचित्॥ १९॥**

नियम से अधिक प्रमाण वाले द्वार यदि उपयोग में लिए जाए तो परिजनों को व्याधियां घेर लेती हैं। प्रमाण से हीन द्वार धननाश करते हैं। पूर्व निर्मित गृह में जिस तरह वास्तु है, यदि उसको भंग किया जाता है, तो गृहपति कभी सुखी नहीं रहता है।

दशविधद्वारः

**दैर्घ्ये सार्द्धशताङ्गुलं च दशभिर्हीनं चतुर्द्धा विधिः**

Scanned with CamScanner

**प्रोक्तं वाऽथ शतं त्वशीतिसहितं युग्मं नवत्या शतम्।**
**तद्वत् षोड्शभिः शतं च नवभिर्युक्तं तथाशीतिकं**
**द्वारं मत्स्यमतानुसारि दशकं योग्यं विधेयं बुधैः॥ २०॥**

'मत्स्यपुराण' के मतानुसार द्वार की ऊँचाई १० तरह की उत्तम है। प्रथम १५० अङ्गुल बराबर द्वार की ऊँचाई हो, इसके भी चार भेद हैं, १५० में से १०-१० अङ्गुल कम कर १४०, १३०, १२०, ११० अङ्गुल के द्वार बनाने चाहिए। इसी तरह १८०, १९०, ११६, १०९ व ८० अङ्गुल के द्वार भी बनाए जा सकते हैं।

कपाटस्य स्वयमुद्घटितादिके फलम्-

**स्वयमपि च कपाटोद्घाटनं वा पिधानं**
**भयदमधिकहीनं शाखयोर्वा विचालेः।**
**पुरुषयुवतिनाशः स्तंभशाखाविहीनं**
**भयदमखिलकाष्ठाग्रं यदाधः स्थितं स्यात्॥ २१॥**

द्वार के कपाट यदि अपने आप खुले या बंद हो जाए, तो डर पैदा करते हैं। शाखाएं एक ओर सकड़ी व दूसरी ओर से चौड़ी हों तो भी भयदायक, बिना शाखा या स्तंभ का द्वार कुल की स्त्री या पुरुष का नाश करता है, द्वार बनाते समय उसमें काम में ली जा रही लकड़ी का मूल भाग नीचे तथा ऊपर का भाग ऊपर ही रखना चाहिए। इसके विपरीत किया जाए तो भी डर पैदा करते हैं।

देवालयादि अवरोधे फलम्-

**देवालयं वा भवनं मठश्च भानोः करैर्वायुभिरेव भिन्नम्।**
**तन्मूलभूमौ परिवर्ज्जनीयं छाया गता यस्य गृहस्य कूपे॥ २२॥**

मंदिर, गृह, मठ आदि के प्रथम भाग में सूर्य की किरणों का आगमन न हो तथा हवा का संचार नहीं हो तो ऐसा आवास अशुभ होता है। जिस घर की छाया दूसरे या तीसरे प्रहर में पास के कुएं पर पड़ती हो, वहां रहना अनुचित है।

**नैको लघुर्वामदिशाविभागे**
**मध्ये द्विषट्दारुणवर्णगेहे।**
**स्तम्भासनं हीनमपि क्षयाय**
**यदाधिकं रोगकरं तदा स्यात्॥ २३॥**

गृह की बाईं ओर एक अलिंद का होना अच्छा नहीं है। इसी तरह गृह या



शाला में एक पाट या एक स्तंभ भी श्रेष्ठ नहीं है। कुंभी भी कम या अधिक हो तो रोग प्रदायक है।

स्तंभादिविचारः

**स्तम्भोऽष्टांशसुवृत्तभद्रसहितो रूपेण चालङ्कृतो**
**युक्तः पल्लवकैस्तभा भरणकं यत् पल्लवेनावृतम्।**
**कुम्भी भद्रयुता कुमारसहिता शीर्षं तथा किन्नराः**
**पत्रं चेति गृहे न शोभनामिदं प्रासादके शस्यते॥ २४॥**

अष्टास्र अथवा आठ कोण वाले, वृत्ताकार स्तंभ, जिस पर भद्र होने के साथ ही मूर्तियां, पल्लव, बेल, किन्नर व पत्र उत्कीर्ण हो तथा शीर्ष में कीचक व कुंभी में भद्र हो ऐसे स्तंभ गृह के लिए श्रेष्ठ नहीं होते, लेकिन राजा के महलों के लिए श्रेष्ठ है।

**स्तम्भो द्वयोर्मध्यगतो न शस्तः**
**शुभङ्करौ पट्टयुगांशतो द्वौ।**
**गृहे प्रशस्ताश्चतुरस्त्रकास्ते स्तम्भा**
**न कण्ठेन विना प्रशस्ताः॥ २५॥**

दो गृहों के बीच एक स्तंभ श्रेष्ठ नहीं है, लेकिन चार पाट और चार स्तंभ या दो-दो पाट व स्तंभ हो तो श्रेष्ठ है, लेकिन उक्त स्तंभ चतुरस्र होने चाहिए। बिना कण्ठ का स्तंभ किसी भी दृष्टि से श्रेष्ठ नहीं माना गया है।

छाद्यस्य फलानि लक्षणञ्च-

**उत्सेधार्द्धविनिर्गतं शरयुगांशेनाधिकं शस्यते**
**च्छाद्यं पट्टसमानकं सुखकरं नाशाय निम्नोन्नतम्।**
**तत् काकस्य च पक्षवच्च कुमुदाभं सौर्पकाला (रा?) पकम्**
**प्रालम्बं च करालकं च विबुधैः प्रोक्तञ्च तत् षड्विधम्॥ २६॥**

गृह का आच्छादन या छत का ढलान दीवारों की ऊंचाई का आधा भाग एक ओर बढ़ा देना चाहिए। इससे अधिक आवश्यकता होने पर मूल ऊँचाई का आधा और एक चौथाई या पञ्चमांश ढलान रखा जा सकता है। ढलान को हमेशा पाट व दोरिया के बराबर रखें। छाद्य के छह प्रकार हैं- १. काकपक्ष या कौए के पंख की तरह (कम ढलान) २. कमल की पंखुड़ियों की तरह दोनों ओर ढलान ३. सूप के आकार या एक तरफा ढलान (चौरसी बंध) ४. मयूर पंखी या कवेलू रखा ढलान ५. प्रालंब या सीधी



Scanned with CamScanner

छत ६. करालक अथवा काष्ठ के फलकों से आच्छादित की गई हो।

अत्रैव आरोहणम्-

**भूम्यारोहणमूर्ध्वतस्तदुपरि प्राग्दक्षिणं शस्यते**
**द्वारन्तूर्ध्वभवं च भूमिरपरा ह्रस्वार्कभागैः क्रमात्।**
**प्रासादे च मठे नरेन्द्रभवने शैलः शुभो नो गृहे तस्मिन्**
**भित्तिषु बाह्यकास्तु शुभदाः प्राग्भूमिकुम्भ्यां तथा॥ २७॥**

दो मंजिला या बहुमंजिले भवन में दूसरी मंजिल पर जाने की सीढ़ी द्वार में प्रवेश के दौरान दाईं ओर होनी चाहिए। नीचे के द्वार से ऊपरी द्वार १२वां अंश छोटा तथा दीवारों की ऊंचाई भी पृष्ठ तल से १२वां अंश कम हो। देवमंदिर, राजमहल और मठ के एक या दोनों ओर पत्थर का प्रयोग श्रेष्ठ है परंतु जनसाधारण के गृह के लिए यह शुभ नहीं है, लेकिन पर्वतीय पत्थर मामूली ढलान या भाग हो तो अशुभ नहीं होता है। यदि कुंभी के नीचे भी पत्थर हो तो या पत्थर की कुंभी हो तो भी अनुचित नहीं। बरामदे में पर्वत पाषाण काम में आए हों या पत्थर का ही बरामदा हो, तो भी अनुचित नहीं।

बहिर्द्वारकर्णेविशेषः

**पृष्ठेक्षणानन्तरमेव बाह्यात् गृहप्रवेशो न शुभङ्करोऽसौ।**
**गृहस्य पृष्ठे यदि राजमार्गस्तदादिभूमेर्नहि पृष्ठमीक्ष्यम्॥ २८॥**

गृह के बाहर यदि पीछे गली हो तो उससे गुजरने के बाद घर में प्रवेश करना पड़े तो वह घर श्रेष्ठ नहीं है, लेकिन गली के बजाय राजमार्ग हो तो श्रेष्ठ है, लेकिन दो मंजिले मकान के नीचे गली या राजमार्ग हो तो पृष्ठमीक्षण दोष होता हैं।

जीर्णगृहेविचारः

**जीर्णं गेहं भित्तिभग्नं विशीर्णं तत्**
**पातव्यं स्वर्णनागस्य दन्तैः।**
**गोशृङ्गैर्वा शिल्पिना निश्चयेन**
**पूजां कृत्वा वास्तुदोषो न तस्य॥ २९॥**

यदि गृह पुराना हो और उसकी कोई दीवार गिर गई हो और उसे पूरा ध्वस्त कर नया बनाना हो तो उसे सोने से बने गजदंत या गोशृंग से गिराना चाहिए तथा गिराने से पूर्व वास्तुपूजा करने से वास्तु दोष नहीं लगता है।



इस सम्बन्ध में अपराजितपृच्छा का मत तुलनीय है- *अपतितानि पातयेच्च क्रियादिकैः। स्वर्णमयं गजं कुर्याद् वृषभं वा यथोचितम्॥ अथरूप्यमयं वापि गजं वा वृषभं तथा। पातयेद् गजदन्ताग्रैर्वृषशृङ्गैरथापि वा॥ ततोऽनुक्षाल्यमानेऽपि वास्तुस्थानं न चालयेत्। ह्रस्ववृध्धी न कर्त्तव्ये कृते दोषो महाभयम्॥ (सूत्र १११, ७-९)*

गृहाच्चतुर्दिक्षु अभिवर्धने फलानि-

**हर्म्यस्यापि समृद्धितो गृहपतिर्वृद्धिं यदापीहत**
**सर्वाशासु विवर्द्धितं च फलदं दुष्टं तदैकत्र च।**
**प्राग् मित्रैरपि वैरमुत्तरदिशाभागे मनस्तापकृत्**
**पश्चादर्थविनाश दक्षिणदिशि शत्रोर्भयं वर्द्धते॥ ३०॥**

समृद्धिवान गृहेश को यदि गृह के विस्तार की अभिलाषा हो तो एक ओर बढ़ाने की अपेक्षा उसे चारों दिशा में विस्तृत करना चाहिए। यदि केवल पूर्व दिशा में बढ़ाएं तो मित्र से वैरभाव होता है। केवल उत्तर की ओर बढ़ाने से मानसिक संताप, पश्चिम में ही वृद्धि पर गृहविनाश और दक्षिण में ही विस्तार करने पर शत्रुभय होता है।

विविधकक्षाणि-

**वामाङ्गे धनवस्त्रदेवभवनं धातुश्रियो वाजिनो**
**नार्यास्त्वौषधभोजनस्य भवनं स्याद्वाटिका वामतः।**
**वह्नेर्गो-जल-दन्ति-शस्त्रसदनं स्त्रीणां तथा दक्षिणे**
**स्थानं माहिषमाजमौर्णिकमिदं याम्याग्निमध्ये शुभम्॥ ३१॥**

राजा को धन, वस्त्र देव, धातु, लक्ष्मी, अश्व, रनिवास, औषध, भोजन तथा रसोईघर अपने राजमहल के बाईं ओर रखना चाहिए। इसी तरह अग्नि, गाय, जल, हाथी, शस्त्र, महिलाओं (भाई की पत्नी, राजकुमार की पत्नी, राजमहिषी, बहन तथा पुत्रियां) का स्थान दाईं ओर तथा भैंस, बकरी व भेड़ों का स्थान दक्षिण व आग्नेयकोण के बीच रखना शुभ होता है।

अश्वादिगृहाणि-

**सुग्रीवे वरुणेऽसुरे गणवरे स्याद् घोटकानां गृहं**
**द्वास्ये युद्धगृहं च नृत्यरमणं गान्धर्ववेदाश्रितम्।**
**राज्ञो मातृगृहं जयेन्द्रजयके रुद्रे महिष्या गृहं**
**सत्ये धर्मगृहं रवौ व्ययगृहं प्रोक्तं जये श्रीगृहम्॥ ३२॥**

Scanned with CamScanner

सुग्रीव, वरुण, असुर व गणधर के स्थानकों पर घुड़साल, द्वारस्थ पर युद्धगृह, गंधर्व पर नृत्यशाला, जय व इंद्र के स्थान पर राजमाता का निवास बनाना चाहिए। इसी तरह रुद्र के स्थानक पर पटरानी का स्थान, सत्य के स्थान में धर्मशाला, सूर्य के स्थानक पर व्ययगृह एवं जय के स्थानक पर लक्ष्मी का स्थानक बनाना चाहिए।

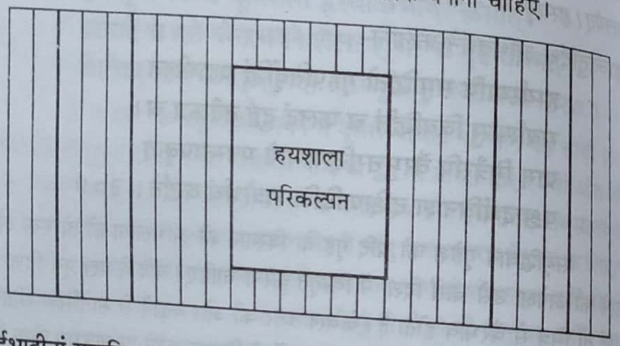


गर्दभादीनां गृहाणि–

**ईशप्राच्योरन्तरे गर्द्दभाना–**
**मुष्ट्राणां वा स्थानमेवात्र कार्यम्।**
**धान्यागारं स्यात्तथा प्राणकोणे**
**भृशेऽप्येवं शम्भुकोणे शिवार्च्चा॥ ३३॥**

ईशानकोण व पूर्व दिशा के मध्य गर्दभ व ऊंटों का स्थान बनाना चाहिए। वायव्य कोण में भृश के स्थानक पर अनाज का भंडार तथा ईशानकोण में महादेव का पूजा स्थान रखना चाहिए।

नृत्यशालादीनां निवेश:

**प्राक् पश्चिमे मारुतवह्निकोणे**
**प्रोक्ता प्रवीणैरपि नृत्यशाला।**
**वर्च्चोगृहं रात्रिचरस्य कोणे**
**प्राक्पश्चिमे भोजनशालिका च॥ ३४॥**

पूर्व, पश्चिम, वायव्य और अग्निकोण में नृत्यशाला बनानी चाहिए। इसी तरह नैऋत्यकोण में प्रसाधन, सुविधा (शौचालय) व पश्चिम में भोजनशाला का निर्माण करना शुभ होता है।



अन्येषां गृहाणि–

**प्राक् शोभा नृपमन्दिरे च पुरतः स्थानं तथा पुत्रकं**
**वामाङ्गे नृपतेस्तथाऽऽयुधधराः कृष्ण तनुत्रापि च।**
**छत्रं चामरतापसाः स्वगुरवस्ताम्बूलधृग् दक्षिणे**
**गेहाधीशयदृच्छया च शयनं सर्वासु भूमीषु च॥ ३५॥**

राजमहल के सामने आकर्षक मंडप बनाना चाहिए तथा मंडप के सामने पुत्र-पौत्र के महल का निर्माण श्रेष्ठ है। इसी तरह राजा के स्थानक से बाईं ओर ऊपर योद्धाओं व बख्तर का स्थानक, राजमहल से ही दाईं ओर ऊपर राजा के छत्रधारक, चंवर दुलाने वाले, गुरु तथा तंबोली का आवास होना चाहिए। इन सबके बावजूद गृह में शयन स्थल गृहपति की इच्छानुसार वह जहां चाहे बना सकता है।

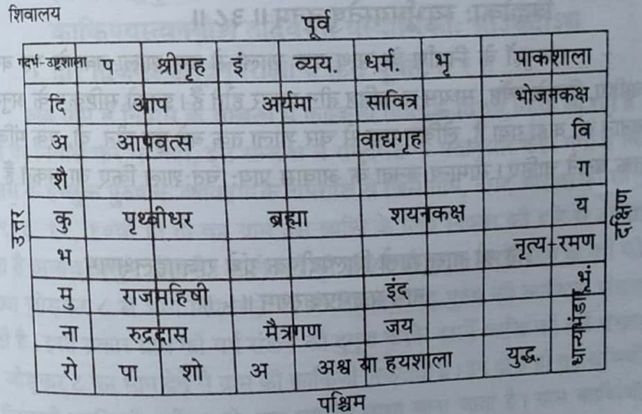


विद्यावाद्यभोजनपाकगृहाणि–

**विवस्वदाख्येऽध्ययनं प्रशस्तं वादित्रगेहं सवितुर्विधेयम्।**
**पूषाश्रितं भोजनमन्दिरं च महानसं वह्निदिशो विभागे॥ ३६॥**

विवस्वत के स्थान पर अध्ययनशाला बनानी चाहिए। सविता के स्थान में वाद्ययंत्र शाला, पूष के स्थान पर भोजनशाला तथा अग्निकोण में महानस बनाएं।

बहिर्द्वारन्यास:

**माहेन्द्राख्ये गोपुरं द्वि-त्रिभूमिं**

Scanned with CamScanner

**भानोः संख्या तस्य मध्ये विधेया।**
**उक्तानुक्तं मन्दिरादौ निवेशे**
**त्वष्ट्रा कार्यं चाज्ञया भूपतीनाम्॥ ३७॥**

दो या तीन भूमि का दरवाजा इंद्र के स्थान में बनाने के साथ ही उस दरवाजे में सूर्य की संख्या या द्वादशचक्र अर्थात घड़ी की स्थापना करनी चाहिए। इस तरह वर्णित या अवर्णित जो भी गृहादि है, शिल्पी को राजा की आज्ञा मानकर बनाने चाहिए।

दिक्शालान्ते कर्तव्यम्–

**दिक्शालान्तं ह्येकशालादिगेहं**
**ज्येष्ठा मध्या कन्यसा दक्षिणाङ्गात्।**
**शाला कार्या लोकगेहे युगान्तात्**
**त्रिद्व्येकाः स्युर्भूमयस्तेषु नूनम्॥ ३८॥**

राजगृहों के निर्माण के साथ एक शाला से दस शाला तक के गृह बनाने चाहिए, जिनके ज्येष्ठ, मध्यम व कनिष्ठ तीन प्रकार होते हैं। इनको सृष्टिक्रम के अनुसार बनाने को कहा गया है, लेकिन एक से चार शाला तक बने गृह तीन, दो, एक मंजिला तक बनाने चाहिए। सामान्य जनता के आवास प्रायः चतुःशाल किए जा सकते हैं।

इति श्री वास्तुशास्त्रे शिल्पदीपक ग्रंथे राजगृहलक्षणम्
नाम पञ्चमप्रकरणम्॥ ५॥

# षष्ठः प्रकरणम्

## नामर्क्षाद्ग्रामवासद्वारगृहप्रवेशमुहूर्तलक्षणम्

अथातो नामर्क्षाद् ग्रामवासे शुभाशुभमुक्तं मुहूर्तचिंतामणौ–

**यद्भं द्व्यङ्कसुतेशदिङ्मितमसौ ग्रामः शुभौ नामभात्**
**स्वं वर्गं द्विगुणं विधाय परवर्गाढ्यं गजैः शेषितम्।**
**काकिण्यस्त्वनयोश्च तद्विवरतो यस्याधिकाः सोऽर्थदोऽथ**
**द्वारं द्विजवैश्यशूद्रनृपराशीनां हितं पूर्वतः॥ १॥**

अब ग्राम में निवास के सम्बन्ध में काकिणी विषयक विचार किया जा रहा है। कहाँ पर निवास करें या नहीं, इस सम्बन्ध में रामदैवज्ञ के मतानुसार कहा गया है कि निवास के इच्छुक पुरुष के व्यावहारिक नामराशि से जिस ग्राम, नगर, मोहल्ला की राशि २, ९, ८, ११, १०वीं हो तो वह ग्राम उस व्यक्ति के लिए निवास की दृष्टि से अच्छा होता है अन्यथ अशुभ होता है। अपने वर्ग की संख्या को दुगुना करके ग्राम के वर्ग की संख्या जोड़कर ८ से भाग दिए जाने पर जो शेष बचे वह पुरुष की काकिणी संख्या होती है। इसी प्रकार ग्राम की वर्ग संख्या को दुगुना करके उसमें व्यक्ति की वर्ग संख्या को जोड़कर ८ का भाग देने से ग्राम की काकिणी निकलती है। इन दोनों ही काकिणियों में जिसकी काकिणी अधिक हो, वह धन देने वाला माना जाता है। ग्राम काकिणी अधिक हो तो निवास कर्ता के लिए वह ग्राम श्रेष्ठ होता है, अन्यथा अशुभ जानें।

**अक्षरानुसार अङ्कज्ञानचक्र**

| अ | क | च | ट | त | प | य | श |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ |

अथ राशिपरत्वेन ग्रामनिवासे निषिद्धस्थानान्याह–

**गोसिंहनक्रमिथुनं निवसेन्न मध्ये**
**ग्रामस्य पूर्वककुभोऽलिझषाङ्गनाश्च।**

**कर्को धनुस्तुलभमेषघटाश्च तद्व-द्वर्गाः**
**स्वपञ्चमपरा बलिनः स्युरैन्द्र्याः ॥ २ ॥**

अब राशि के अनुसार ग्रामवासकरण व निषेध पर विचार किया जा रहा है। जिस ग्राम में रहना हो, उसके नौ भागों की कल्पना करें। इसमें वृष, सिंह, मकर, मिथुन राशि वाले व्यक्ति को ग्राम के मध्य में निवास नहीं करना चाहिए। पूर्वादि दिशाओं में क्रम से ८, १२, ६, ४, ९, ७, १, ११ राशि वालों को अर्थात् वृश्चिक राशि वालों को पूर्व में, मीन राशि वालों को अग्निकोण, कन्या राशि वालों को दक्षिण में, कर्क राशि वालों को नैर्ऋत्यकोण में, धनु राशि वालों को पश्चिम में, तुला राशि वालों को वायव्यकोण में, मेष राशि वालों को उत्तर में और कुम्भ राशि वाले व्यक्तियों को ग्राम के ईशान कोण में निवास करना अशुभ होता है। अकरादि वर्ग पूर्वादि दिशाओं में बलशाली माने जाते हैं और अपने से पाँचवाँ शत्रु वाले होते हैं।

**वर्ग बोधक सारिणी**

| दिशा/कोण | निषिद्ध राशि |
|---|---|
| मध्य | २, ५, १०, ३ |
| पूर्व | ८ |
| आग्नेय | १२ |
| दक्षिण | ६ |
| नैर्ऋत्य | ४ |
| पश्चिम | ९ |
| वायव्य | ७ |
| उत्तर | १ |
| ईशान | ११ |

ध्वजान्वदन्नायैर्वर्णपरत्वेन द्वारं निवेशनम्-

**ध्वजादिकाः सर्वदिशि ध्वजे मुखं**
**कार्य हरौ पूर्वयमोत्तरे तथा।**
**प्राच्यां वृषे प्राग्यमयोर्गजेऽथवा**



**पश्चादुदक्पूर्वयमे द्विजादितः ॥ ३ ॥**

किस दिशा में आयानुसार द्वार रखें, इस सम्बन्ध में रामदैवज्ञ ने कहा है कि प्रथम ध्वज आय में सभी दिशाओं में द्वार, तृतीय सिंह आय में पूर्व, दक्षिण व उत्तर दिशाओं में; पाँचवीं वृष आय में पश्चिम दिशा में और सातवीं गज आय हो तो पूर्व और दक्षिण दिशा में भवन का मुख्य द्वार रखना उत्तम होता है। इसी प्रकार यदि ब्राह्मणादि वर्णानुसार विचार करें तो ब्राह्मण को १ ध्वज आय और पश्चिम दिशा में द्वार रखना शुभ होता है। क्षत्रिय को ३ सिंह आय और उत्तर में द्वार, वैश्य को ५ वृष आय और पूर्व दिशा में द्वार तथा शूद्र को ७ गज आय तथा दक्षिण दिशा में द्वार बनाना प्रशस्त होता है।

**आय सम्बन्ध से द्वार**

| आय | ध्वज | सिंह | वृष | गज |
|---|---|---|---|---|
| द्वारदिशा | सब दिशा | पूर्व दक्षिण उत्तर | पश्चिम | पूर्व दक्षिण |

**वर्ण सम्बन्ध से द्वार**

| वर्ण | ब्राह्मण | क्षत्रिय | वैश्य | शूद्र |
|---|---|---|---|---|
| आय | ध्वज | सिंह | वृष | गज |
| द्वारदिशा | पश्चिम | उत्तर | पूर्व | दक्षिण |

अथ गृहारम्भे विशिष्टकालेनिषेधम्-

**गृहेशतत्स्त्रीसुखवित्तनाशोऽर्केन्द्वी-**
**ज्यशुक्रे विबलेऽस्तनीचे।**
**कर्तुः स्थितिर्नो विधुवास्तुनोर्भे**
**पुरःस्थिते पृष्ठगते खनिः स्यात् ॥ ४ ॥**

वास्तु कार्य के आरंभ काल में गृह स्वामी की जन्मराशि से गोचरोक्त विचार से (अ.) यदि सूर्य निर्बल हो (शत्रुराशि का हो अथवा ४, ८, १२ हो) और नीचराशि (तुला) का हो तो गृह स्वामी के विनाश की आशंका रहती है। (ब.) चंद्रमा निर्बल, अस्त, नीचराशि (वृश्चिक) का हो तो भार्या का विनाश होता है। अनुराधा का चंद्रमा

Scanned with CamScanner

नीच दोष से मुक्त माना जाता है। (स.) वृहस्पति निर्बल, अस्त, अपनी नीचराशि (मकर) का हो तो स्वामी के पुत्र के लिए घातक होता है। (द.) शुक्र निर्बल, अस्त, नीचराशि (कन्या) का हो तो धन-संपदा का विनाश जानना चाहिए। इसलिए गेहारंभ काल में सूर्य, चंद्रमा, वृहस्पति और शुक्र का बलि होना, उदयी रहना, उच्च में अथवा उच्च राशि के समीप में रहना आवश्यक है। गृहारंभ काल के चंद्रमा और वास्तु का नक्षत्र गृहद्वार के आगे पड़े तो उस घर में गृह स्वामी का निवास नहीं होता और तस्करों का भय भी रहता है।

अथ तिथिपरत्वेन द्वारनिषेधम्-

**पूर्णेन्दुतः प्राग्वदनं नवम्यादिषूत्तरास्यं त्वथ परिश्चमास्यम्।**
**दर्शादितः शुक्लदले नवम्यादौ दक्षिणास्यं न शुभं वदन्ति॥५॥**

पूर्णिमा से कृष्ण पक्ष की अष्टमी तक पूर्वमुख का गृह नहीं बनाना चाहिए। कृष्ण पक्ष की नवमी से चतुर्दशी पर्यन्त उत्तरमुख का गृह, अमावस से शुक्लपक्ष की अष्टमी तक पश्चिम दिशा में गृह का मुख और शुक्ल पक्ष की नवमी से चतुर्दशी तक दक्षिण में गृह का मुख नहीं रखना चाहिए।

**पूर्वादि द्वार के लिए शुभाय नक्षत्रादिज्ञापक चक्र**

| द्वार दिशा | | पूर्व | | | दक्षिण | | पश्चिम | | | उत्तर | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| आय १२,५ | | ध्वज, सिंह गज | | | ध्वज, सिंह गज | | ध्वज, वृष | | | ध्वज, सिंह | |
| जाति १२,५ | | वैश्य | | | शूद्र | | ब्राह्मण | | | क्षत्रिय | |
| नक्षत्र १२,६ | | मघा से ७ धनिष्ठा से ७ | | | कृतिका से ७ अनुराधा से ७ | | मघा से ७ धनिष्ठा से ७ | | | कृतिका से ७ अनुराधा से ७ | |
| राशि १२,५ | | ४, ८, १२ | | | २, ६, १० | | ३, ७, ११ | | | १, ५, ९ | |
| मास | सौर | कुंभ सिंह | कर्क | मकर वृष | मेष वृ. | तुला | कुंभ सिंह | कर्क | मकर वृष | मेष वृ. | तुला |
| १२,१५ | चांद्र | फा. | श्रा. | पौष | वै. | मार्ग. | फा. | श्रा. | पौष | वै. | मार्ग. |
| तिथि १२,१९ | | कृष्ण ९ से शुक्ल १४ तक | | | अमावस से कृष्ण ८ तक | | शुक्ल ९ से कृष्ण १४ तक | | | पूर्णिमा से शुक्ल ८ तक | |



अथ गृहारम्भे पञ्चाङ्गशुद्धि-

**भौमार्करिक्तामाद्यूने चरोने च दिपञ्चकः।**
**व्यष्टान्त्यस्थैः शुभैर्गेहारम्भस्त्र्यायारिगैः खलैः॥६॥**

मङ्गलवार एवं रविवार रिक्ता (४, ९, १४) अमावस, प्रतिपदा (उपलक्षण से अष्टमी भी), इनसे रहित तिथियों (२, ३, ६, ७, १०, ११, १२, १३, १५) और वारों (सोमवार, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनिवार) में, चर (१, ४, ७, १०) और सिंह को छोड़कर शेष (२, ३, ६, ८, ९, ११, १२) लग्नों में, ८वें और १२वें स्थान को छोड़कर अन्य स्थानों में शुभग्रहों के रहने पर, ३, ६, ११वें स्थानों में पापग्रहों के रहने पर गृहारम्भ किया जाना उत्तम होता है।

*वास्तुप्रदीप में कहा गया है- नष्टेंदुरिक्ताकुजसूर्यवर्जे चरोनभे सिंहविहीनलग्ने। पापैस्त्रिषष्ठायगतैः शुभैश्च व्यत्याष्टगैर्गेहविधिः शुभः स्यात्॥ (१२१)*

*देवालय, गृहारंभ जलाशय आदि के लिए खात दिशानुसार राहु मुख के संदर्भ में रामदैवज्ञ का मत है- देवालये गेहविधौ जलाशये राहोर्मुखं शम्भुदिशो विलोमतः। मीनार्कसिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे खाते मुखात् पृष्ठविदिक्छुभा भवेत्॥ (मुहूर्तचिंतामणि १२, १९)*

**स्पष्टार्थ चक्र**

| | ईशान | वायव्य | नैर्ऋत्य | आग्नेय |
|---|---|---|---|---|
| देवालयारंभ | मीन, मेष, वृष सूर्य | मिथुन, कर्क, सिंह सूर्य | कन्या, तुला, वृश्चिक सूर्य | धन, मकर, कुंभ सूर्य |
| गृहारंभ | सिंह, कन्या, तुला सूर्य | वृश्चिक, धन, मकर सूर्य | कुंभ, मीन, मेष सूर्य | वृष, मिथुन, कर्क सूर्य |
| जलाशयारंभ | मकर, कुंभ, मीन सूर्य | मेष, वृष, मिथुन सूर्य | कर्क, सिंह, कन्या सूर्य | तुला, वृश्चिक, धन सूर्य |
| खातदिशा | वायव्य | नैर्ऋत्य | अग्नेय | ईशान |

अथ गृहकूपादिनिर्माणदिगवस्थित्या फलं-

**कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाश-**
**स्त्वैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यवृद्धिः।**

Scanned with CamScanner

**सूनोर्नाशः स्त्रीविनाशो मृतिश्च**
**सम्पत्पीडा शत्रुतः स्याच्च सौख्यम्॥ ७॥**

अब कूपादि निर्माण के विषय में कहा जा रहा है कि यदि पिण्ड में भवन के मध्य भाग में कूप बनवाया जाए तो धन का नाश होकर वहाँ दारिद्र्य का निवास होने लगता है। कोणों के फल के सम्बन्ध में जाने कि ईशान कोण में कूप बनवाया जाए तो पुष्टिकारक, पूर्व में हो तो ऐश्वर्य-वृद्धि, अग्निकोण में पुत्रनाश, दक्षिण दिशा में स्त्रीनाश, नैर्ऋत्य में मृत्यु, पश्चिम में सम्पतिकारक, वायव्य में शत्रु से पीड़ा तथा ईशान कोण में कूप-कुण्ड बनवाया जाए तो सुख की प्राप्ति होती है।

### कूपचक्र

ईशान — पूर्व — आग्नेय

| | | |
|---|---|---|
| पुष्टि | ऐश्वर्य | पुत्रनाश |
| सौख्य | धननाश | स्त्रीनाश |
| शत्रुपीड़ा | संपत्ति | मृत्यु |

उत्तर (बाएँ) — दक्षिण (दाएँ)

वायव्य — पश्चिम — नैर्ऋत्य

अत्र गृहारम्भप्रसक्त्या सामान्यतः प्राग्लग्नबलमप्यभिधायेदानीमारब्धगृहाणां नियत स्थानावस्थित्या नियतायुर्दाययोगद्वयम्-

**जीवार्कविच्छुक्रशनैश्चरेषु लग्नारिजामित्रसुखत्रिगेषु।**
**स्थितिः शतं स्याच्छरदां सितार्कारिज्ये तनुत्र्यङ्गसुते शतं द्वे॥ ८॥**

अब भवनों की आयु पर विचार किया जा रहा है। गृह के आरंभ काल की लग्न से, वृहस्पति लग्नगत, सूर्य और बुध सातवें, शुक्र चतुर्थ और शनि तृतीय हो (अन्य ग्रह किसी भी स्थान में हो) तो भवन की पूर्णायु १०० वर्ष होती है। इसी प्रकार यदि लग्न में शुक्र, तृतीय सूर्य, मङ्गल छठे और वृहस्पति पञ्चम स्थान में हो तो ऐसी स्थिति में बनने वाले भवन की आयु पूरे २०० वर्ष होती है।

*इस सम्बन्ध में श्रीपति का कथन है कि यदि लग्न स्थान में शुक्र, पाँचवें स्थान पर गुरु, छठवें मंगल और तीसरे स्थान पर सूर्य हो तब यदि गृहारंभ किया जाए तो गृहायु दो सौ वर्ष की हो जाती है- लग्ने भृगुः पुत्रगतश्च जीवः षष्टे कुजस्तिग्मकरस्तृतीयः। निवेशने यस्य गृहस्य तद्धि शतद्वयं तिष्ठति वत्सराणाम्॥ (ज्योतिषरत्नमाला १७, २३)*



### शतवर्ष ज्ञानस्पष्टार्थ चक्र

| क्रम | गृह का स्वामी | स्थान |
|---|---|---|
| १. | बृहस्पति | लग्नस्थ या केन्द्रस्थ |
| २. | बुध | सप्तम अथवा दशम |
| ३. | सूर्य | षष्ठ या द्वादश |
| ४. | शुक्र | चतुर्थ या लग्नस्थ |
| ५. | शनि | तृतीय स्थान |

### द्विशतवर्ष ज्ञानस्पष्टार्थ चक्र

| क्रम | गृह का स्वामी | स्थान |
|---|---|---|
| १. | शुक्र | केन्द्रस्थ |
| २. | सूर्य | तृतीय |
| ३. | वृहस्पति | पञ्चम |
| ४. | मङ्गल | षष्ठ |

अथान्यन्नियतायुर्दाययोगद्वयम्-

**लग्नाम्बरायेषु भृगुज्ञभानुभिः**
**केन्द्रे गुरौ वर्षशतायुरालयः।**
**बन्धौ गुरुर्व्योम्नि शशी कुजार्कजौ**
**लाभे तदाशीतिसमायुरालयः॥ ९॥**

आयु के लिए एक विचार यह भी है कि गृहादि के आरम्भकालीन लग्न में शुक्र, दसवें में सूर्य और केंद्र (१, ४, १०) में वृहस्पति हो तो वह गृह १०० वर्ष की अवधि वाला होता है। इसी प्रकार यदि चतुर्थ स्थान में वृहस्पति, दशम में चन्द्रमा, ग्यारहवें स्थान में मङ्गल और शनि दोनों ही स्थित हो तो उस भवन की आयु ८० वर्ष होती है।

*दैवज्ञ श्रीपति का कथन है कि गृहारंभ के समय चंद्रमा दसवें, गुरु चौथे, मंगल और शनिश्चर ग्यारहवें स्थान पर हो ऐसे योग में बनने वाले गृह की अस्सी वर्ष की आयु होती है- शशाङ्कजीवौ खरसातलस्थौ कुजार्कजौ लाभगतौ च यस्य। प्रारम्भकाले भवनस्य यस्य स्थितिः निरुक्ता शरदामशितिः॥ (उपर्युक्त १७, २४)*

Scanned with CamScanner

एकाशीतिवर्ष ज्ञानस्पष्टार्थ चक्र

| क्रम | गृह का स्वामी | स्थिति |
|---|---|---|
| १. | शनि | एकादश स्थान |
| २. | मङ्गल | एकादश स्थान |
| ३. | गुरु | चतुर्थ स्थान |
| ४. | चंद्रमा | दशम स्थान |

अथ लक्ष्मीयुक्तगृहयोगम्-

**स्वोच्चे शुक्रे लग्नगे वा गुरौ वेश्मगतेऽथवा।**
**शनौ स्वोच्चे लाभगे वा लक्ष्मया युक्तं चिरं गृहम्॥ १०॥**

अब लक्ष्मीयुत गृह के योगत्रय पर विचार है कि १. यदि अपनी उच्च राशि मीन लग्न में हो, २. अथवा चतुर्थ स्थान में अपनी उच्च राशि (कर्क) का वृहस्पति हो, ३. या फिर लाभ स्थान में अपनी उच्च राशि (तुला) का शनि हो— ऐसे तीन योग होने पर आरंभ हुए गृह में चिर काल तक लक्ष्मी का निवास होता है, वह गृह ऐश्वर्य धन-धान्य से परिपूर्ण रहता है।

*श्रीपति का मत है कि गृह कार्यारम्भ के समय अपने उच्च राशि का शुक्र लग्न में अथवा अपने उच्च (कर्क) राशि का गुरु चतुर्थ भाव में अथवा अपनी उच्च राशि (तुला) का शनि एकादश स्थान में हो तो विभूति-ऐश्वर्य से परिपूर्ण गृह चिर स्थायी होता है-स्वोच्चवर्त्तिनि भृगौ विलग्नगे देवमन्त्रिणि रसातलेऽथवा। स्वोच्चगे रविसुतेऽथवायां स्यात्स्थितिश्च सुचिरं सह श्रिया॥ (उपर्युक्त १७, २५)*

अथ गृहस्थ परहस्तगामित्वयोगम्-

**द्यूनाम्बरे यदैकोऽपि परांशस्थो ग्रहो गृहम्।**
**अब्दान्तः परहस्तस्थं कुर्याच्चेद्वर्णपोऽबलः॥ ११॥**

अब वर्षभर में गृह के परहस्त में चले जाने के योग पर विचार किया जा रहा है कि यदि अति शुभ फल देने वाला एक भी ग्रह शत्रु के नवांश में होकर सप्तम या चतुर्थ गृह में हो तथा ब्राह्मणादि क्रम से वर्ण स्वामी ग्रह भी बलहीन हो तो ऐसे ग्रहस्थिति में प्रारम्भ किया गया गृह एक ही वर्ष के अन्दर दूसरे व्यक्ति के अधीन हो जाता है।



*श्रीपति का कथन है कि यदि एक भी ग्रह शत्रु की राशि नवमांश में स्थित होकर दसवें अथवा सातवें स्थान में अवस्थित हों और वर्णपति निर्बल हों तो अगले एक वर्ष के अंदर-अंदर गृह किसी अन्य के हस्तगत हो जाता है। परभाग से शत्रु का अंश माना जाता है- एकोऽपि नूनं परभागवर्ती वियत्स्मरस्थः खचरोच्चमध्ये। करोति गेहं परहस्तयातं स्यादुर्बलश्चेदिह वर्णनाथः॥ (उपर्युक्त १७, २७)*

अथ गृहारम्भे नक्षत्रविशेषेण च फलविशेषाच्छुभसूचकफलविशेषं योगद्वयं-

**पुष्यध्रुवेन्दुहरिसर्पजलैः सजीवैस्तद्वासरेण**
**च कृतं सुतराज्यदं स्यात्।**
**द्वीशाश्वितक्षिवसुपाशिशिवैः सशुक्रैर्वारे**
**सितस्य च गृहं धनधान्यदं स्यात्॥ १२॥**

अब गेहारंभ काल के नक्षत्र के नक्षत्र विशेष से फल पर विचार किया जा रहा है। पुष्य, ध्रुव (तीनों उत्तरा, रोहिणी), मृगशिरा, श्रवण, आश्लेषा, पूर्वाषाढ़ा- इन नौ ही नक्षत्रों में से जिस किसी में वृहस्पति हो, वृहस्पतिभुक्त हो, उस नक्षत्र में और वृहस्पति वार को ही आरंभ किया गया गृह पुत्र और राज्य प्रदाता होता है। इसी प्रकार विशाखा, अश्विनी, चित्रा, धनिष्ठा, शतभिषा और आर्द्रा- इन छह नक्षत्रों में से किसी नक्षत्र पर शुक्र हो या शुक्रवार को ही गृहारंभ हुआ हो तो वह गृह धन-धान्य को देने वाला सिद्ध होता है।

*यही मत वृद्धवशिष्ठ का है कि विशाखा, चित्रा, त्वाष्ट्रा, धनिष्ठा, शतभिषा, आर्द्रा ये नक्षत्र हों तथा शुक्र के सहित हों, उस दिन शुक्रवार ही हो तो ऐसा गृह धन, स्वर्ण, धान्यादि प्रदाता होता है- द्विदैवत्वाष्ट्रवारेंऽरुद्रादित्यवसूडुषु। शुक्रेण सहितेष्वेषु कृतं धान्यप्रदं गृहम्॥ (वशिष्ठसंहिता ३९, ३३)*

अथान्यद्योगद्वयमशुभदातृ-

**सारैः करेज्यान्त्यमघाम्बुमूलैः कौजेऽह्नि**
**वेश्माग्निसुतार्दिदं स्यात्।**
**सज्ञैः कदास्त्रार्यमतक्षहस्तैर्ज्ञस्यैव**
**वारे सुखपुत्रदं स्यात्॥ १३॥**

अन्य अनिष्टप्रद योग पर विचार किया जा रहा है। हस्त, पुष्य, रेवती, मघा, पूर्वाषाढ़ा और मूल- इन छह नक्षत्रों में से जिस किसी नक्षत्र पर मङ्गल हो, उसी नक्षत्र

और मङ्गलवार हो तो ऐसे ग्रहादि योग में आरम्भ गृह अग्निभय और पुत्रकष्टकारी होता है। इसी प्रकार रोहिणी, अश्विनी, उत्तर फाल्गुनी, चित्रा और हस्त इन पाँच नक्षत्रों में से किसी नक्षत्र पर बुध हो, उसी नक्षत्र एवं बुधवार का ही योग हो तब बनने वाला गृह सुख और पुत्र प्रदायक होता है।

*यही मत वृद्धवशिष्ठ का है- पितृमूलेज्यभाग्यार्कपौष्णभेषु च यत्कृतम्। कुजेन सहितेष्वेषु गृहं सन्दह्यतेऽग्निना॥ (३९, २७)*

अत्राशुभफलदमेवयोगम्-

**अजैकपादहिर्बुध्न्यशक्रमित्रानिलान्तकैः**
**समन्दैर्मन्दवारे स्याद्रक्षोभूतयुतं गृहम्॥ १४॥**

अब अशुभ फलदायी योग के विषय में जाने कि पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, ज्येष्ठा, अनुराधा, रेवती, स्वाती और भरणी नक्षत्रों में जिस किसी भी नक्षत्र में शनि हो, उस नक्षत्र और शनिवार के दिन या शनि युक्त नक्षत्र भाव में शनिवार के दिन उक्त कोई नक्षत्र होने पर किया गया गृह का प्रारंभ राक्षस और भूत के निवास के लिए ही होता है, ऐसा जानें।

*वृद्धवशिष्ठ का भी यही विचार है- अजपादद्वितीये याम्यमित्रेन्द्रानिलभेषु च। यत्कृतं शनिसंयुक्ते दिह्यते यक्षराक्षसैः॥ (३९, २९)* नारद का मत है *'ज्येष्ठानुराधके चैव भरणी-स्वातीपूर्वभे। धनिष्ठास्वपि ऋक्षेषु शनिस्तिष्ठेद्दिनस्य च॥* कृपणो नामतः प्रोक्तो धनधान्यादिके गृहे। पुत्रो जातोऽथवा तस्मिन्गृह्यन्ते यक्षराक्षसैः॥'

अत्र विशेषमाह वसिष्ठः

**अग्निनक्षत्रगे सूर्ये चन्द्रे वा संस्थिते यदि।**
**निर्मितं मंदिरं नूनमग्निना दह्यतेऽचिरात्॥ १५॥**

यदि कृतिका नक्षत्र पर सूर्य या चंद्रमा की स्थिति हो या गमन हो, उसी नक्षत्र में रविवार या सोमवार हो, तब गेहारम्भ किए जाने से अग्निदाह का भय रहता है और ऐसा गृह चिरायु नहीं होता है।

*यह श्लोक पीयूषधाराटीकाकार गोविंद ने उद्धृत किया है। कृतिका तो वैसे भी ग्राह्य नहीं हैं, इसे गृहारम्भ के लिए नहीं देखना चाहिए। स्वयं गोविन्द ने भी कहा है- आवश्यकत्वाद्विहितनक्षत्रानुपलब्धौ मध्यमेषु भेषु गृहारम्भः प्राप्तः स कृत्तिकायां मामूदिति निषेधः। सूर्यनक्षत्रे कृतिकायां माभूदिति पूर्वोऽपि। (पीयूषधाराटीका १२, २७)*



अथ केषाञ्चिन्मतेन द्वारचक्रं सफलम्-

**सूर्यर्क्षाद्युगभैः शिरस्यथ फलं लक्ष्मीस्ततः कोणभै-**
**र्नागैरुद्वसनं ततो गजमितैः शाखासु सौख्यं भवेत्।**
**देहल्यां गुणभैर्भृतिगृहपतेर्मध्यस्थितैर्वेदभैः**
**सौख्यं चक्रमिदं विलोक्य सुधिया द्वारं विधेयं शुभम्॥ १६॥**

यहाँ सफलद्वार चक्र दिया जा रहा है। सूर्य के नक्षत्र से वर्तमान चंद्र नक्षत्र तक गणना करते हुए प्रथम चार नक्षत्र द्वार के सिर में रखें, उसमें द्वार लगाए जाने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इसके बाद ८ नक्षत्र चारों कोने में रखें, वहाँ द्वार स्थापना से भवन स्वामी को उद्वेग या भवन से भटकाव होता है। आगे के ८ नक्षत्र शाखा या उभयबाहु में स्थापित करें, उसमें यदि द्वार की स्थापना की जाती है तो वहां निवास से सुख सुलभ होता है। उसके बाद के ३ नक्षत्र देहली पर स्थापित करें, वहाँ पर द्वार स्थापना से गृहपति का मरण माना जाता है जबकि शेष ४ नक्षत्र मध्य में द्वार स्थापन से सुख की प्राप्ति होती है।

*मुहूर्तचिंतामणिकार की प्रमिताक्षराटीका में स्पष्टोक्ति है कि द्वारचक्र का अवलोकन कर ही द्वार की स्थापना से शुभशुभ को जानना कर्तव्य है- इदं चक्रं विलोक्य सुधिया शुभं शुभफलदं द्वारं विधेयं कर्तव्यमिति। (प्रमिताक्षराटीका १२, २९)*

*गोविंददैवज्ञ ने ज्योतिर्निबंध से द्वारचक्र को उद्धृत किया है- द्वारचक्रं प्रवक्ष्यामि भाषितं विश्वकर्मणा। सूर्यभाद्भचतुष्कं तु शिरस्योपरि विन्यसेत्॥ द्वे-द्वे कोणे प्रदातव्ये शाखायुग्मे द्वयं द्वयम्। अधश्च त्रीणि देयानि वेदा मध्ये प्रतिष्ठिताः॥ राज्यं स्यादूर्ध्वनक्षत्रे कोणेषूद्वासनं भवेत्। शाखायां लभते लक्ष्मीमधश्चैव मृतिं लभेत्॥ मध्यमेषु लभेत्सौख्यं चिंतनीयं सदा बुधैः॥ (तथैव)*

**स्पष्टार्थचक्र**

| स्थान | शिर | कोण | शाखा | देहली | मध्य |
|---|---|---|---|---|---|
| २७ नक्षत्र | ४ | ८ | ८ | ३ | ४ |
| फलाफल | लक्ष्मी | उद्वेग | सुख | मृत्यु | सुख |

अथ गृहप्रवेशम्-

तत्रापूर्वप्रवेशसुपूर्वप्रवेशयोः कालशुद्ध्यादिकम्-



**सौम्यायने ज्येष्ठतपोऽन्त्यमाधवे**

**यात्रानिवृत्तौ नृपतेर्नव गृहे।**
**स्याद्वेशनं द्वार:स्थमृदुध्रु वोडुभिर्जन्मर्क्ष**
**लग्नोपचयोदये स्थिते॥ १७॥**

अब यहाँ पर गृहप्रवेश मुहूर्त पर विमर्श किया जा रहा है। सूर्य के उत्तरायण में ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन, वैशाख मास में, गृह के द्वार के समक्ष (६, ५, ७) नक्षत्रे मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) तथा ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी) नक्षत्रों में, भवन स्वामी की जन्मराशि और जन्मलग्न से उपचय ३, ६, १०, ११ राशि के लग्न एवं स्थिर (२, ५, ८, ११) राशि के लग्नों में (उपलक्षण से द्विस्वभाव ३, ६, ९, १२ लग्नों में), नृपति का यात्रा से लौटकर गृहप्रवेश या नवगृह में प्रवेश करना शुभ होता है। शुक्लपक्ष एवं कृष्णपक्ष की २, ३, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १३, १५ तिथियों में, रवि और भौम को छोड़कर अन्य वारों सोमवार, बुध, वृहस्पतिवार, शुक्रवार, शनिवार को शुभ समय में प्रवेश करना प्रशस्त माना गया है।

अथ जीर्णगृहादिविषयकप्रवेशविशेषम्-

**जीर्णे गृहेऽग्न्यादिभयान्नवेऽपि**
**मार्गोर्जयोः श्रावणिकेऽपि सत्स्यात्।**
**वेशोऽम्बुपेज्यानिलवासवेषु**
**नावश्यमस्तादिविचारणाऽत्र॥ १८॥**

पुनरूद्धार के बाद किसी भवन में कब प्रवेश करें, इस सम्बन्ध में कहा गया है कि अग्निकाण्ड से दग्ध, अतिवृष्टि से गिरे, राजकोप से गिरे या गिराए और पुनः बनाए गए भवन या अनुरक्षण के बाद मार्गशीर्ष, कार्तिक, श्रावण, अपि शब्द से वैशाख, ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन- इन सात महीनों में शतभिषा, पुष्य, स्वाती, धनिष्ठा नक्षत्र में प्रवेश किया जाना शुभ होता है। इसी प्रकार इस कार्य में गुरु और शुक्रास्त, बाल्य, वृद्धत्व, सिंह, मकरस्थ वृहस्पति लुप्त संवत आदि दोषों पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।

अथ गृहप्रवेशदिनात् प्राक्कर्तव्यां वास्तुपूजां विवक्षुस्तत्रक्षत्राणि-

**मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु मूलभे**
**वास्त्वर्चनं भूतबलिं च कारयेत्।**

वास्तुपूजा एवं भूत बलि का मुहूर्त- मृदु (मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, रेवती), ध्रुव (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी), क्षिप्र या लघु (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्), चर (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) और मूल- इन १७ नक्षत्रों में वास्तुपूजन और भूतबलि दी जानी चाहिए। बली की वशिष्ठोक्त विधि आगे दी जा रही है-



## अथ ( परिशिष्टे ) वशिष्ठोक्त वास्त्वध्याय:

*मण्डनादि वास्तुकारों, स्थपतियों ने गृहप्रवेश पर पर्याप्त विचार किया है। जैसा कि कहा गया है कि नवीन गृह में प्रवेश उत्तरायण में करना चाहिए। इस उपलक्ष्य में पूर्व दिवस वास्तु पूजा, भूतबलि आदि कर्म सम्यक् रूप से संपन्न करने चाहिए। वृद्ध वशिष्ठ का भी यही मत है- अथ प्रवेशो नवसद्मनश्च सौम्यायने जीवसिते बलाढ्ये। सिते च पक्षे शुभवासरे च वास्त्वर्चनं भूतबलिं च कृत्वा॥*

वास्तुपूजन की कई विधियाँ हमारे यहां प्रचलित रही है। देववास्तु से लेकर मानववास्तु के सन्दर्भ में नाना मतों को ग्राह्य किया जाता रहा है। यहाँ वृद्धवशिष्ठ के मतानुसार सर्वप्रयोजनीय '*वास्त्वध्याय*' को वशिष्ठसंहिता नामक ग्रंथ से उद्धृत किया जा रहा है, इसी अध्याय को नारदपुराणकार ने भी उद्धृत किया है। प्रमिताक्षराटीका में स्वयं रामदैवज्ञ और पीयूषटीका में गोविंददैवज्ञ ने '*मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु*' के बाद वशिष्ठसंहिता (वशिष्ठसंहिता ३९, १९६-२२८ एवं नारदपुराण पूर्वभाग, द्वितीयपाद ६००-६१८) से वास्तुपूजन विधि को उद्धृत किया है-

तत्र तावत्प्रवेशलक्षणम्-

**निर्माणे मंदिराणां च प्रवेशे त्रिविधेऽपि वा॥ १॥**
**वास्तुपूजा तु कर्त्तव्या यस्मात्तां कथयाम्यथः।**

गृह के निर्माण के अनन्तर उसमें सविधि प्रवेश करना चाहिए। प्रवेश तीन प्रकार का कहा गया है- अपूर्वसंज्ञक, सपूर्व संज्ञक प्रवेश तथा द्वन्द्व संज्ञक प्रवेश। नूतन गृह में प्रवेश के समय वास्तुपूजा की जानी चाहिए, यहाँ मैं इस पूजा की समग्र विधि को कह रहा हूँ।

एकाशीतिकोष्ठकम्-

**गृहमध्ये हस्तमात्रं समन्तात्तण्डुलोपरि॥ २॥**
**एकाशीतिपदं कार्य्यं तिलैस्तुल्यं सुशोभनम्।**

वास्तुपूजन के लिए गृह के मध्यभाग में चावल पर पूर्व से पश्चिम की ओर एक-एक हाथ लम्बी दस रेखाएँ खींचे। फिर उत्तर से दक्षिण की ओर भी उतनी ही लम्बी-चौड़ी दस रेखाओं की रचना करें। इस प्रकार उनमें बराबर-बराबर ८१ सुन्दर

Scanned with CamScanner

पद या कोष्ठक हो जाते हैं।

**एकद्वित्रिपदाः पञ्चचत्वारिंशत्सुरोर्चिताः ॥ ३ ॥**
**द्वात्रिंशद्वाह्यतो वक्ष्यमाणाश्चान्तस्त्रयोदश।**
**तेषां स्थानानि नामानि वक्ष्यामीश्वरकोणतः ॥ ४ ॥**

उक्त कोष्ठकों में एक, दो एवं तीन पदों वाले ४५ देवताओं की यथोक्त स्थानानुसार पूजा के लिए नामोल्लेख करना चाहिए। इनमें से ३२ देवताओं को बाहरी प्रान्त के कोष्ठकों और १३ देवताओं को आन्तरिक कोष्ठकों में विराजित करना चाहिए। उक्त ४५ देवताओं के स्थानों और नामों का कोणानुसार आगे वर्णन किया जा रहा है।

### एकाशीतिपदे वास्तुन्यासक्रमचक्र

चरकी — पूर्व — विदारिका

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ईश | प. | ज. | इ. | सू. | स. | भृ. | आ. | अ. |
| दिति | आप | | | अर्यमा | | | सावित्र | पू. |
| अदिति | आपवत्स | | | | | | सविता | वि. |
| शैल | | | | | | | | गृ. |
| कुबेर | पृथ्वीधर | | | ब्रह्मा | | | विवस्वान | य. |
| भल्लाट | | | | | | | | ग. |
| मुख्य | रुद्र | | | मैत्र | | | | भृ. |
| नाग | रुद्रदास | | | महेंद्र जय | | | | मृ. |
| रो. | पा. | शे. | अ. | व. | पु. | सु. | न. | पि. |

उत्तर (left) — दक्षिण (right)

पापा — पश्चिम — पूतनिका

तत्र देवतास्थानानि-

**तत्राग्निशम्भुकोणस्थस्त्वसौ चैव पदेश्वरः।**
**तस्माद्द्वितीयः पर्जन्यश्चासावेकपदेश्वरः ॥ ५ ॥**
**जयन्त्येन्द्रार्कसत्याख्या भृशाश्च द्विपदेश्वराः।**
**आकाशवायूपरतः क्रमादेवपदेश्वराः ॥ ६ ॥**
**एवं प्राच्यां नव ज्ञात्वा नवमे वान्यदिक्षु च।**
**आद्याश्चान्तावेकपादा द्विपादाः पञ्च मध्यमाः ॥ ७ ॥**
**अष्टौ पितृगणाधीशा यमांताः पश्चिमे सुराः।**



**आद्यंतौ द्वौ चैकपदौ द्विपदाः पञ्च मध्यगाः ॥ ८ ॥**
**रोगादिरित्यन्त्सुराः सप्त सौम्यदिशि क्रमात्।**
**तदधस्थश्चतुष्कोणेष्वीशानादिषु च क्रमात् ॥ ९ ॥**
**आपः सावित्रविजय-रुद्राश्चैकपदेश्वराः।**
**मध्ये नवपदो ब्रह्मा तस्येशानादिकोणगाः ॥ १० ॥**
**आपवत्सोऽथ सविता विबुधाधिपसंज्ञकाः।**
**राजयक्ष्मा च चत्वारः सुराश्चैकपदेश्वराः ॥ ११ ॥**
**ब्रह्मणः पूर्वतो दिक्षु त्रिपदाश्चामरा अमी।**
**अर्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधरः क्रमात् ॥ १२ ॥**
**स्वस्वस्थानेषु देवेषु स्थापितेष्वीदृशं भवेत्।**
**कोणेषु पञ्च पञ्चैव चतुर्ष्वैकपदाः सुराः ॥ १३ ॥**
**प्रागादिदिक्षु द्विपदाः पञ्च पञ्च यथाक्रमात्।**
**ब्रह्मणः पूर्वतो दिक्षु द्विपदाः स्युः समीपगाः ॥ १४ ॥**
**हिरण्यरेताः पर्जन्यो जयन्तः पाकशासनः।**
**सूर्यसत्यौ भृशाकाशौ वायुः पूषा च वै तथा ॥ १५ ॥**
**गृहक्षतः पितृपतिर्गन्धर्वो भृङ्गराजकः।**
**मृगः पितृगणाधीश स्थाप्यो दौवारिकाह्वयः ॥ १६ ॥**
**सुग्रीवः पुष्पदन्तश्च जलाधीशो निशाचरः।**
**शोषः पापश्च रोगो हि मुखो भल्लाट एव च ॥ १७ ॥**
**सोमसर्पौ दित्यदिती द्वात्रिंशदमराः स्मृताः।**
**आपश्चैवापवत्सश्च जयो रन्ध्रस्तथैव च ॥ १८ ॥**
**मध्ये नवपदो ब्रह्मा तस्थौ तस्य समीपगः।**
**प्रागाद्यन्तरिता देवाः परितो ब्रह्मणः स्मृताः ॥ १९ ॥**
**अर्यमा सविता चैव विवस्वान्विबुधाधिपः।**
**मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात् ॥ २० ॥**
**आपवत्सोऽष्टमः पञ्चचत्वारिंशत् सुरोत्तमाः।**
**ज्ञात्वैवं स्थाननामानि ब्रह्मणा सहितान्यसेत् ॥ २१ ॥**

किनारे के बत्तीस कोष्ठों में ईशान कोण से आरंभ करते हुए क्रमशः बत्तीस

Scanned with CamScanner

**व्यर्कारिक्ताचरदर्शचैत्रै।**
**ह्यगेऽम्बुपूर्णं कलशं द्विजांश्च**
**कृत्वा विशेषद्वेश्म भकूटशुद्धम्॥ २०॥**

इसके बाद जिस स्थिर अथवा द्विस्वभाव लग्न में जिस लग्न से केंद्र (१, ४, ७, १०) त्रिकोण (५, ९) तथा आयधनत्रिग (११, २, ३ स्थान) में शुभग्रह हो तथा ६, ६, ११वें स्थान पर पापग्रह हों; ४, ८ स्थान शुद्ध (शुभग्रह, पापग्रह से रहित) हों, भवन स्वामी की जन्मराशि तथा जन्मलग्न से आठवीं का प्रवेश-लग्न नहीं हो, रवि, मङ्गलवार, रिक्ता या चतुर्थी, नवमी तथा चतुर्दशी, चरसंज्ञक १, ४, ७, १० लग्न, अमावस एवं चैत्र महीने को त्यागकर अन्य शुभवार, शुभतिथि, मास, स्थिर, द्विस्वभाव लग्नों (२, ३, ५, ८, ९, ११, १२) में, जल पूरित, पञ्चपल्लव से युक्त दूर्वा, कुश, पञ्चरत्न, सर्वौषधी से युक्त दीर्घ वर्तिका वाले दीप से युक्त घट एवं विद्वान द्विज को आगे करते हुए, मङ्गलगीतों को गाती सौभाग्यवती युवतियों, परिजनों के साथ वाद्यवादन के साथ, भकूट के शुद्ध रहने पर नूतन गृह में प्रवेश किया जाना चाहिए।

*वशिष्ठ का विचार है कि शुक्र को पीछे और सूर्य को बायीं ओर रखकर ब्राह्मणों का पूजनकर पूर्ण कलश को आगे रख तोरण, माला, वितान आदि से सुशोभित आवास में नारी समुदाय के गीतों के साथ, वाद्यों की ध्वनि के बीच गृहप्रवेश किया जाना चाहिए- कृत्वा शुक्रं पृष्ठतो वामतोर्कं विप्रान्पूज्यानग्रतः पूर्णकुम्भम्। रम्यं हर्म्यं तोरणं स्रग्वितानैः सम्यक् स्त्रीभिर्गीतवाद्यैः विशेत्तत्॥ (वशिष्ठसंहिता ३८, २४)*

*यही मत श्रीपति का भी है- कृत्वा विप्रान्सजलकलशं चाग्रतो वामतोर्क स्नातः स्रग्वी विमलवसनो मङ्गलैर्वेद घोषैः। व्यस्तैर्यात्रा कथितशकुनैर्द्वारमार्गेण राजा हर्म्यं पुष्पप्रकररुचिरं तोरणाढ्यं विशेच्च॥ (ज्योतिषरत्नमाला १८, १०)*

अथ वामगतार्कज्ञानं तिथिपरत्वेन पूर्वाद्यभिमुखगृहप्रवेशम्-

**वामो रविर्मृत्युसुतार्थलाभतोऽर्के**
**पञ्चभे प्राग्वदनादिमन्दिरे।**
**पूर्णातिथौ प्राग्वदने गृहे शुभो**
**नन्दादिके याम्यजलोत्तरानने॥ २१॥**

अब वाम रवि का ज्ञान कहा जा रहा है कि वामार्क का ज्ञान होने पर ही घर में प्रवेश किया जाना चाहिए। प्रवेश लग्न से अष्टमराशि से आगे पाँच (८, ९, १०, ११, १२) स्थान में सूर्य के रहने पर पूर्वाभिमुख भवन में प्रवेश करने वाले लिए बॉयाँ सूर्य होता है। प्रवेश लग्न से पञ्चमभाव राशि से आगे पाँच (५, ६, ७, ८, ९) राशि में सूर्य की सत्ता होने पर दक्षिण दिशा मुख वाले मकान में प्रवेश के लिए वाम सूर्य होता है। इसी प्रकार गृहप्रवेश लग्न से द्वितीय भाव से आगे पाँच (२, ३, ४, ५, ६) स्थानों में सूर्य की स्थितिवश पश्चिम की ओर मुख वाले भवन में प्रवेश के लिए वाम सूर्य होता है और प्रवेश लग्न से ११वें भाव से आगे पाँच (११, १२, १, २, ३) भावों में सूर्य के होने पर उत्तर दिशा में मुख वाले भवन में प्रवेश के लिए वाम सूर्य होता है।



इसी प्रकार पूर्व में द्वार होने पर पूर्णातिथि (५, १०, १५) में, दक्षिण द्वार में नंदातिथि (१, ६, ११) में पश्चिम में भद्रातिथि (२, ७, १२) में और उत्तर में भवन का द्वार होने पर जया (३, ८, १३) तिथियों में गृह में प्रवेश शुभ माना जाता है।

**वाम रवि एवं प्रवेशार्थ तिथिचक्र**

| गृहमुख | पूर्वमुख | दक्षिणमुख | पश्चिममुख | उत्तरमुख |
|---|---|---|---|---|
| तिथि | पूर्णा<br>५, १०, १५ | नंदा<br>१, ६, ११ | भद्रा<br>२, ७, १२ | जया<br>३, ८, १३ |
| सूर्य स्थान | ८<br>९<br>१०<br>११<br>१२ | ५<br>६<br>७<br>८<br>९ | २<br>३<br>४<br>५<br>६ | ११<br>१२<br>१<br>२<br>३ |

अथ गृहप्रवेशे कलशवास्तुचक्रम्-

**वक्त्रे भूरविभात्प्रवेशसमये कुम्भेऽग्निदाहः कृताः**
**प्राच्यामुद्वसनं कृता यमगता लाभः कृताः पश्चिमे।**
**श्रीर्वेदाः कलिरुत्तरे युगमिता गर्भे विनाशो गुदे**
**रामाः स्थैर्यमतः स्थिरत्वमनलाः कण्ठे भवेत् सर्वदा॥ २२॥**

अब प्रवेशकाल में दर्शनीय कुम्भचक्र ज्ञान लिखा जा रहा है। सूर्य जिस नक्षत्र में हो, उससे १ नक्षत्र के मुख में स्थापित करने पर वही प्रवेश नक्षत्र हो तो अग्निदाह, फिर आगे के ४ पूर्व के नक्षत्रों में उद्वास, फिर ४ नक्षत्र दक्षिण में लाभ, इसके बाद ४

Scanned with CamScanner

नक्षत्र पश्चिम भाग में लक्ष्मीप्रद, तदनंतर ४ नक्षत्र उत्तर में कलहकारी, तदोपरांत ४ नक्षत्र गर्भ में नाशकारक और इसके बाद ३ नक्षत्र गुदा में स्थिरता देने वाले होते हैं जबकि ३ नक्षत्र कण्ठप्रदेश वाले स्थिरता प्रदायक हैं अर्थात् चक्रानुसार सूर्य के नक्षत्र से ५, ८, ८, ६ क्रम से शुभ-अशुभ फल प्रदान करने वाले होते हैं।

**स्पष्टार्थ कुंभचक्रं**

| **स्थान** | मुख | पू. | द. | प. | उ. | ग. | गु. | क |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| **नक्षत्र** | १ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ३ | ३ |
| **फल** | दाह | उद्वास | लाभ | श्री | कलह | नाश | स्थैर्य | स्थैर्य |
| **कुल** | ५ अशुभ | | ८ शुभ | | ८ अशुभ | | ६ शुभ | |

*'ज्योतिषप्रकाश' ग्रंथ से मुहूर्तचिंतामणि (१३, ६) की पीयूषधाराटीका में उक्त नक्षत्रानुसार ही फलाफल क्रमश मरण, गमन, धन, लक्ष्मी, शत्रुता, रोग, स्थिरता एवं सुख बताया गया है- भू$_{१}$ वेंद$_{४४४४}$ पञ्चकत्रिस्त्रिः$_{३३}$ प्रवेशे कलशेर्कभात्। मृतिर्गतिर्धनं श्रीः स्याद्वैरं रुक् स्थिरता सुखम्॥ शिवदास ने ज्योतिर्निबंध में कहा है कि प्रवेशकाल में सूर्य जिस नक्षत्र में हो उससे ५, ८, ८, ६ नक्षत्रों में प्रवेश नक्षत्र होने पर अशुभ, शुभ, अशुभ, शुभ होता है- प्रवेशे कलशेर्कक्षात्पञ्चनागाष्ट षट् क्रमात्। अशुभं च शुभं ज्ञेयमशुभं च शुभं तथा॥ (ज्योतिर्निबंध पृष्ठ १६७)*

अथ गृहप्रवेशप्रकरणोपसंहारं सूचयन्-

**एवं सुलग्ने स्वगृहं प्रविष्य वितानपुष्यश्रुतिघोषयुक्तम्।**
**शिल्पज्ञदैवज्ञविधिज्ञपौरान् राजार्चयेद्भूमिहिरण्यवस्त्रैः॥ २३॥**

इस प्रकार पूर्व विधि के अनुसार शुभलग्न में वितान (चंदोवा, दीवारगरी एवं चांदनी), पुष्पों से अलंकृत, वेद ध्वनि से युक्त अपने गृह में प्रवेश कर शिल्पज्ञ, दैवज्ञ, कर्मकाण्ड की विधि करवाने वाले आचार्य, नागरिकों की भूमि, स्वर्ण गौ, वसन आदि से पूजा कर उनसे अपने लिए शुभाकांक्षा करनी चाहिए।

*श्रीपति ने इस प्रसंग में भूगोलकर्ता या शुल्बविद्, लिङ्गिन, पुरवासी, विप्र, सुहृदयों व शिल्पियों के यथेष्ट सम्मान और अंधजनों, दीन-हीनों को उपहार आदि देने का निर्देश दिया है- ततो नृपो विप्रसुहृत् पुरोधसः शिल्पज्ञभूगोलविदश्च लिङ्गिनः। धनैश्च रत्नैः पशुभिः समर्चयेत् सहान्धदीनान् पुरवासिनस्तथा॥ (ज्योतिषरत्नमाला १८, ११)*



*भोजराज का इस बारे में कहना है-भूरिपुष्प निकरं सुतोरणं तोयपूर्णकलशाभि* शोभितं। गंधपुष्पबलिपूजितामरं ब्राह्मणध्वनियुतं विशेद्गृहम्॥ पश्चात्काञ्चरूप्यवस्त्र कुसुमैः संपूजयेत्सादरं दैवज्ञं सहशिल्पिभिर्द्विजगुरून्बंधूस्तथान्यानपि। गत्वा वेश्म पुराणधर्म कथया वासं वसेत्सद्धनैरात्रौ धर्मविशुद्धशांतहृदयो निद्रां निषेवेदसौ॥ (राजमार्तण्ड ८७९-८८०)

अथ चंद्रवासज्ञानमाह ग्रंथांतरे-

**मेषे च सिंहे धनुपूर्वभागे वृषे**
**च कन्यामकरे च याम्ये।**
**युग्मे तुला कुंभसु पश्चिमायां**
**कर्कालिमीने दिशि चोत्तरस्यां[1] ॥ २४॥**

अब चंद्रमा के वास पर विचार किया जा रहा है- मेष, सिंह, धनु इन तीन राशियों का चंद्रमा हो तो पूर्व में चंद्रमा का वास जानना चाहिए। वृषभ, कन्या, मकर इन तीन राशियों का चंद्रमा हो तो दक्षिण दिशा में, मिथुन, तुला, कुंभ का चंद्रमा हो तो पश्चिम और कर्क, मीन और वृश्चिक का चंद्रमा हो तो उत्तर दिशा में चंद्र का गृह जानना चाहिए।

चंद्रस्थित्यानुसारे फलम्-

**सन्मुखो ह्यर्थलाभाय दक्षिणे सुख-संपदे।**
**पष्ठतः प्राणनाशाय वाम चंद्रे धनक्षयः[2] ॥ २५॥**
**(चतुर्थाष्टद्वादशस्थश्चन्द्रो वर्ज्य स्वराशितः।**
**चतुर्थे कलहश्चन्द्रोऽष्टमे मृत्युर्व्यये क्षतिः॥)**

यदि सन्मुख का चंद्रमा हो तो अर्थ लाभ देता है, दक्षिण की ओर का चंद्रमा हो तो सुख एवं संपदा देता है, पश्चिम या पीठ का चंद्रमा हो तो मरण एवं वाम चंद्रमा धन का हरण, क्षरण करता है। (स्वयं की राशि से ४, ८ एवं १२ चंद्र वर्जित होता है। चतुर्थ चंद्रमा में क्लेश, आठवें में मृत्यु और बारहवें चंद्रमा में हानि होती है।)

*राजवल्लभ. में कहा गया है कि प्रथमतः कृतिकादि ७-७ नक्षत्रों को क्रमानुसार लिखें। इस प्रकार पूर्व दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर दिशा में ७-७ नक्षत्र होंगे। गृह का नक्षत्र*

---

१. प्रकाशित पाठे- मेषेषुसिंहेधनु पूर्वभागे वृषेषुकन्यामकरे तु याम्याम्। मिथुनेतुलैवैघट पश्चिमायां कर्केषुमीनेअली उत्तरांये॥
२. 'सन्मूखो अर्थलाभाय दक्षिणतोसुखसंपदा। पश्चंतोमर्णचैव वामेचंद्र धनक्षयम्॥' तत्रैव।

Scanned with CamScanner

जिस भाग में पड़े, चंद्रमा की स्थिति उसी नक्षत्र पर स्वीकारी जाती है। मन्दिर या राजभवन में पीछे चंद्र स्थिति हानिप्रद एवं सम्मुख चंद्र आयु का क्षरण करता है। दक्षिण एवं वाम भाग में चद्रंमा की स्थिति प्रशस्त कही गई है- धिष्ण्यानीह च ससश: क्रमतया वह्नेस्तु पूर्वादित: सृष्ट्या तानि भवन्ति यत्र गृहभं तत्रैव चंद्रो भवेत्। हानिं पृष्ठगत: करोति पुरतस्वायु: क्षतिं चंद्रमा: पार्श्वे दक्षिणवामके शुभकरोऽग्रे भूपदेवालयो:॥ (राजवल्लभ वास्तुशास्त्रम् ३, ११)

**घातकचंद्रनक्षत्रतिथिवारज्ञानचक्रम्**

| क्रम | राशि | चंद्र | नक्षत्र | तिथि | वार |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | मेष | मेष | मघा | नन्दा | रवि |
| २. | वृष | सिंह | हस्त | पूर्णा | शनि |
| ३. | मिथुन | धनु | स्वाती | भद्रा | सोम |
| ४. | कर्क | वृष | अनुराधा | भद्रा | बुध |
| ५. | सिंह | कन्या | मूल | जया | शनि |
| ६. | कन्या | मकर | श्रवण | पूर्णा | शनि |
| ७. | तुला | मिथुन | शतभिषा | रिक्ता | गुरु |
| ८. | वृश्चिक | तुला | रेवती | नन्दा | शुक्र |
| ९. | धनु | कर्क | भरणी | जया | शुक्र |
| १०. | मकर | वृश्चिक | रोहिणी | रिक्ता | भौम |
| ११ | कुंभ | कुंभ | आर्द्रा | जया | गुरु |
| १२. | मीन | मीन | अश्लेषा | पूर्णा | शुक्र |

व्यवहाररत्नम् में यही मत है- जन्मेन्दुनंदार्कमघा च मेषे वृषे शनि: पञ्चहस्तपूर्णा:। स्वाती च युग्मे नवचंद्रभद्रा: कर्कऽनुराधाबुधयुग्मभद्रा:॥ सिंहे जया षट्शनिश्च मूलं पूर्णा शनिर्द्दिक् श्रवणास्त्रियाश्च। गुरुस्त्रिरिक्ता शतभं तुले च नन्दालिके रेवतिसप्तशुक्रा:॥ चापे चतु:शुक्रजयाभरण्यो मृगेऽष्टमो रोहिणिभौमरिक्ता:। कुंभे जयाऽऽर्द्रागुरुरुद्रघाता झषे भृगुश्चाऽन्त्यभुजङ्गपूर्णा॥ (१, ४६-४८)



अथ ध्रुवगणं तत्कृत्यञ्च रामदैवज्ञे-

**उत्तरात्रय रोहिण्यो भास्करश्च ध्रुवं स्थिरम्।**
**तत्र स्थिरं बीजगेहशां त्यारामादिसिद्धये॥ २६॥**

तीनों उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा), रोहिणी ये चार नक्षत्र और रविवार इन सभी की स्थिर और ध्रुव संज्ञा कही गई है। इनमें स्थिर कार्य (जलाशयारंभ बीज बोना, गेहारंभ, शांतिकर्म, बगीचा लगाना आदि) सफल होते हैं।

अथ चरगणं तत्कृत्यञ्च-

**स्वात्यादित्ये श्रुतेस्त्रीणि चंद्रश्चापि चरं चलम्।**
**तस्मिन्गजादिकारोहो वाटिकागमनादिकम्॥ २७॥**

स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण से तीन (श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा) ये ५ नक्षत्र और सोमवार इन सभी की चार और चल संज्ञा कही गई है। इसमें हाथी (घोड़ा, यान आदि) आदि यानों पर चढ़ना और बगीचा में यात्रा करना आदि कार्य शुभ होते हैं।

अथोग्रगणं तत्कृत्यञ्च-

**पूर्वात्रयं याम्यमघे उग्रं क्रूरं कुजस्तथा।**
**तस्मिन् घाताग्निशाठ्यानि विषशस्त्रादि सिद्ध्यति॥ २८॥**

तीनों पूर्वा (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा), भरणी, मघा ये ५ नक्षत्र और मंगलवार ये सभी उग्र और क्रूरसंज्ञक हैं। इनमें धातकर्म (किसी को मारना), अग्निकार्य (पहले दिन भट्टे, चूल्हे में आग लगाना), शठता का कार्य (किसी को ठगना), विषघात, शस्त्रघात जैसे कार्य सफल होते हैं।

अथ मिश्रगणं तत्कृत्यञ्च-

**विशाखाग्नेयभे सौम्यो मिश्रं साधारणं स्मृतम्।**
**तत्राग्निकार्यं मिश्रं च वृषोत्सर्गादि सिद्ध्यति॥ २९॥**

विशाखा, कृतिका और बुधवार की संज्ञा मिश्र और साधारण कही गई है। इनमें अग्नि से संबंधित कार्य, मिश्र कार्य, वृष का उत्सर्ग करना या बैल को छोड़ना जैसे कार्य किए जाने चाहिए।

अथ लघुगणं तत्कृत्यञ्च-

**हस्ताश्वि-पुष्याभिजित: क्षिप्रं लघु गुरुस्तथा।**
**तस्मिन् पण्यरतिज्ञानं भूषाशिल्पकलादिकम्॥ ३०॥**

Scanned with CamScanner

हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित् और गुरुवार इनकी लघु और क्षिप्र संज्ञा की गई है। इनमें पण्य या व्यापार कार्य, रति, ज्ञान, भूषणनिर्माण, भूषणधारण, शिल्पकला सीखना, उसका व्यवसाय करना, ६४ कलाओं का अध्ययन-अध्यापन आदि कार्य प्रशस्त होते हैं।

अथ मृदुगणं तत्कृत्यञ्च-

**मृगान्त्यचित्रामित्रर्क्षं मृदु मैत्रं भृगुस्तथा।**
**तत्र गीताम्बरक्रीडा मित्रकार्य विभूषणम्॥ ३१॥**

मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा ये ४ नक्षत्र और शुक्रवार इनकी मृदु और मैत्र संज्ञा होती है। इनमें गीत सीखना व गाना, वस्त्र बनाना, धारण करना व सिलवाना, खेलना, खेलने की शिक्षा ग्रहण करना, मित्रों का कार्य-संपादन, मित्रता व संधि करना, भूषण निर्माण एवं धारण करना उत्तम होता है।

अथ तीक्ष्णगणं तत्कृत्यञ्च-

**मूलेन्द्रार्द्राहिभं सौरिस्तीक्ष्णं दारुणसंज्ञकम्।**
**तत्राभिचारघातोग्रीभेदाः पशुदमादिकम्॥ ३२॥**

मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा ये चार नक्षत्र और शनिवार इनकी तीक्ष्ण और दारुण संज्ञा होती है। इनमें अभिचार कर्म, धातकर्म, उग्र कर्म, भेद, पशु दमन आदि सिद्ध होते हैं।

अथ यमघंटयोगज्ञानमाह ग्रंथान्तरे-

**मघार्कवारे शशिने विशाखा आर्द्रा कुजे चेंदुसुते च मूलम्।**
**गुरौ तथाग्निर्भृगुरोहिणी च शनौ च हस्ते यमघंटयोगः॥ ३३॥**

रविवार को यदि मघा नक्षत्र हो तो यमघण्ट योग होता है। इसी प्रकार सोमवार को विशाखा नक्षत्र, मङ्गलवार को आर्द्रा नक्षत्र, बुधवार को मूल नक्षत्र, गुरुवार को कृतिका नक्षत्र, शुक्रवार को रोहिणी नक्षत्र और शनिवार को हस्त नक्षत्र का योग यमघण्टयोग बनाते हैं।

**यमघण्टयोग स्पष्टार्थचक्र**

| वार | रवि | सोम | मङ्गल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नक्षत्र | मघा | विशाखा | आर्द्रा | मूल | कृतिका | रोहिणी | हस्त |



यमघण्टयोगफलाफलम्-

**यमघंटे गते मृत्युः कुलच्छेद करं गृहे।**
**प्रतिष्ठायां मृत्युकरः शिशुर्जातो न जीवति॥ ३४॥**

यमघण्ट योग में यदि गाँव में जाए तो मृत्यु होती है, विवाह करे तो कुल का नाश होता है, प्रतिष्ठा करें तो मृत्यु होती है, बालक का जन्म हो तो उसका विनाश होता है, ऐसा जानना चाहिए।

अथ कालवासविचारः

**अर्कोत्तरे वायुदिशा च सोमे**
**भौमे प्रतीच्यां बुधे नैर्ऋते च।**
**याम्ये गुरौ वह्निदिशा च शुक्रे**
**मन्दे च पूर्वे प्रवदन्ति कालः[1]॥ ३५॥**

रविवार को उत्तर दिशा में, सोमवार को वायव्यकोण में, मङ्गलवार को पश्चिम दिशा में, बुध को नैर्ऋत्यकोण में, गुरुवार को दक्षिण दिशा में, शुक्रवार को आग्नेयकोण में तथा शनिवार को पूर्व दिशा में काल वास होता है, अतः ये यात्रा में वर्जित हैं।

अथ सफलायोगिनीचरामदेवज्ञे-

**नवभूम्यः शिववह्नयोऽक्ष-**
**विश्वेर्ककृताः शकरसास्तुरंगातिथ्यः।**
**द्विदिशोमावसवश्चपुर्वतः स्यु**
**स्तिथयः सम्मुखवागनानरस्ता॥ ३६॥**

नवमी और प्रतिपदा तिथियों को पूर्व दिशा में, एकादशी व तृतीया को अग्निकोण में, पंचमी व त्रयोदशी को दक्षिण में, द्वादशी अव चतुर्थी को नैर्ऋत्यकोण में, चतुर्दशी व षष्ठ को पश्चिम दिशा में सप्तमी व पूर्णिमा को वायव्य कोण में, द्वितीय व दशमी को उत्तर दिशा, अमावस व अष्टमी को ईशान कोण में योगिनी का निवास रहता है। यह योगिनी यात्रा में सम्मुख और बाएँ रहे तो शुभ नहीं होती, किंतु दाएँ और पीछे रहे तो शुभ फल देती है।

---

१. रवेत्तरावाव्यदिशाचसोमे भोमे प्रतिश्चाबुधनेऋतस्य। याम्यां गुरुयां गुरुवह्निदिशाच शुक्रेशनिजपूर्वेप्रवदंतिकाल।। यति प्रकाशित पाठे।

### योगिनीबोधक चक्र

| योगिनीवास | तिथि | गंतव्य दिशा | त्याज्य दिशा |
|---|---|---|---|
| पूर्व | १, ९ | पश्चिम, उत्तर | पूर्व, दक्षिण |
| आग्नेय | ३, १० | आग्नेय, ईशान | आग्नेय, नैर्ऋत्य |
| दक्षिण | ५, १३ | दक्षिण, पूर्व | दक्षिण, पश्चिम |
| नैर्ऋत्य | ४, १२ | नैर्ऋत्य, आग्नेय | नैर्ऋत्य, वायव्य |
| पश्चिम | ६, १४ | पश्चिम, दक्षिण | पश्चिम, उत्तर |
| वायव्य | ७, १५ | वायव्य, नैर्ऋत्य | वायव्य, ईशान |
| उत्तर | २, १० | उत्तर, पश्चिम | उत्तर, पूर्व |
| ईशान | ८, ३० | ईशान, वायव्य | ईशान, आग्नेय |

अथ वारशूलनक्षत्रशूलञ्च-

**न पूर्वदिशि शक्रभे न विधुसौरिवारे तथा**
**न चाजपदभे गुरौ यमदिशीनदैत्येज्ययौः।**
**न पाशिदिशि धातृभे कुजबुधेऽर्यमर्क्षे तथा**
**न सौम्यककुभि व्रजेत् स्वजयजीवितार्थी बुधः॥ ३७॥**

अब वार व नक्षत्र शूल के सम्बन्ध में विचार किया जा रहा है। धन, विजय तथा जीवनाकांक्षी मनुष्य को चाहिए कि वह ज्येष्ठा नक्षत्र में तथा सोमवार, शनिवार में पूर्व दिशा में यात्रा नहीं करें। इसी प्रकार पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र और वृहस्पतिवार में दक्षिण दिशा; रविवार, शुक्रवार और रोहिणी नक्षत्र में पश्चिम दिशा और मङ्गलवार, बुधवार तथा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उत्तर दिशा में यात्रा का परित्याग कर दें।

### वार नक्षत्र शूल स्पष्टार्थ चक्र

| दिशा | पूर्व | दक्षिण | पश्चिम | उत्तर |
|---|---|---|---|---|
| **वारशूल** | सोम, शनि | गुरुवार | रवि, शुक्र | मंगल, बुध |
| **नक्षत्रशूल** | ज्येष्ठा | पूर्वाभाद्रपद | रोहिणी | उत्तराफाल्गुनी |

नक्षत्र शूल के निवारण के लिए श्रीपति और नारद आदि ने उचित व्यवस्था दी



है, जिसमें अश्विन्यादि नक्षत्रों पर क्रमशः कुल्थी आदि पदार्थ का सेवन कर यात्रा करने का निर्देश दिया गया है।

### स्पष्टार्थ चक्र

| क्रम | नक्षत्र | दोहद | क्रम | नक्षत्र | दोहद |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | अश्विनी | कुल्थी | १५. | स्वाति | अपूप |
| २. | भरणी | तिल-चावल | १६. | विशाखा | नाना पक्षी मांस |
| ३. | कृतिका | उड़द | १७. | अनु. | उत्तम फल |
| ४. | रोहिणी | गौ का दही | १८. | ज्येष्ठा | कछुआ का मांस |
| ५. | मृगशिरा | गोघृत | १९. | मूल | मैना का मांस |
| ६. | आश्लेषा | गोदुग्ध | २०. | पू.षा. | गोह का मांस |
| ७. | पुनर्वसु | हरिण का मांस | २१. | उ.षा. | शाही का मांस |
| ८. | पुष्य | हरिण का रुधिर | २२. | अभिजित | मूंग, हविष्यान्न |
| ९. | आश्लेषा | खीर | २३. | श्रवण | कृशरान्न |
| १०. | मघा | नीलकण्ड पक्षी का मांस | २४. | धनिष्ठा | मूंग-भात |
| ११. | पू. फा. | मृग का मांस | २५. | शतभिषा | यवपिष्ट |
| १२. | उ.फा. | खरगोश का मांस | २६. | पू.भा. | मछली-भात |
| १३. | हस्त | साठी का चावल | २७. | उ.भा. | मिश्रित अन्न |
| १४. | चित्रा | काकुनि | २८. | रेवती | दही-भात |

अथ शुभाशुभसूचकेत्वेन द्वेधा शकुनाः सन्ति।

तान् वक्तुकामस्तावच्छुभसूचकाञ्छकुनान् मुहूर्तचिंतामणौ-

**विप्राश्वेभफलान्नदुग्धदधिगोसिद्धार्थपद्माम्बरं**
**वेश्यावाद्यमयूरचाषनकुला बद्धैकपश्वामिषम्।**
**सद्वाक्यं कुसुमेक्षुपूर्णकलशच्छत्राणि मृत्कन्यका**
**रत्नोष्णीषसितोक्षमद्यससुतस्त्रीदीप्तवैश्वानराः॥ ३८॥**

वास्तु विषयक ग्रंथों में वास्तुपूजा, काष्ठार्थ वनप्रवेश, शिला परीक्षादि के निमित्त यात्रा के लिए शकुन विचार पर विचार किया गया गया है। यहां रामदैवज्ञ के मत से कहा गया है कि यात्रा के समय ब्राह्मण, अश्व, हाथ, फल, अन्न, दूध, दही, गौ, सरसों, कमल, धुला कपड़ा, वेश्या, वाद्य, मोर, चाष नामक पक्षी, नीलकण्ठ, नेवला, बँधा



Scanned with CamScanner

हुआ एक पशु, मांस, माङ्गलिक वचन, फूल, गन्ना, जलपूरित कलश, छाता, गीली मिट्टी, कुँवारी कन्या, रत्न, पगड़ी, श्वेत वर्ण वाला वृषभ, मद्य, पुत्र के साथ नारी और प्रज्वलित अग्नि सामने आती दिखाई दे तो शुभ जानना चाहिए। इससे कार्य सिद्ध होता है, ऐसा जानना चाहिए।

**आदर्शाञ्जनधौतवस्त्ररजका मीनाज्यसिंहासनं**
**शावं रोदनवर्जितं ध्वजमधुच्छागास्त्रगोरोचनम्।**
**भारद्वाजनृयानवेदनिनदा माङ्गल्यगीताङ्कुशा**
**दृष्टाः सत्फलदाः प्रयाणसमये रिक्तो घटः स्वानुगः ॥ ३९ ॥**

इसी प्रकार दर्पण, अञ्जन या काजल, धुला हुआ वस्त्र, धोबी, मछली, घी, सिंहासन, रोदन रहित मुर्दा, पताका, मधु, बकरा, हथियार, गोरोचन, भारद्वाज पक्षी जिसे भरदूल भी कहा जाता है, नरयान या पालकी–सुखपाल, वेद मंत्रों की ध्वनि का सुनाई देना, माङ्गलिक गीत और अङ्कुश– ये वस्तुएँ भी यदि सामने दिखाई देती हों तो शुभसूचक समझना चाहिए। इसी प्रकार प्रयाण करते समय अपने पीछे आता हुआ रिक्त कलश भी शुभकारक होता है।

*श्रीपतिभटाचार्य के मत से उक्त शकुन वर्णन तुलनीय है– छुच्छुकाकभवनगोधिकारलापिङ्गलारिकारिवधूश्च पोतकी। सूकरी पुरुषसंज्ञिताः शिवा वामतः खलु यियासतां शुभाः॥ ऋक्षो भासः छिक्करो वानरश्च श्रीकंठश्च पिप्लाख्यो रुरुश्च। ये स्त्री संज्ञा दक्षिणाः स्युः प्रशस्ताः प्रोक्ताः पूर्वैः सूरिभिस्ते प्रयाणे॥ भृङ्गाराञ्जन वर्द्धमानमुकुराबद्धेकपश्चामिषोष्णीष क्षीरनृयानपूर्णकलशच्छत्राणि सिद्धार्थकाः। वीणाकेतन मीनपङ्कजदधि-क्षौद्राज्यगोरोचनाः कन्याशङ्ख सितोक्षवस्तु मनोविप्राश्वरत्नानि च॥ प्रज्वलज्वलनदन्तितुरङ्गाभद्रपीड गणिकाङ्कुशमृत्स्नाः। अक्षतेक्षुफलचामरभक्षाण्यायुधानि च भवन्ति शुभानि॥ भेरिमृदङ्गमृदुर्मद्दल शङ्खवीणा वेदध्वनिर्मधुरमङ्गलगीतघोषाः। पुत्रान्विता च युवतीः सुरभिः सवत्सा धोतांबरश्चरजकोऽभिमुखः प्रशस्तः॥ (ज्योतिषरत्नमाला १५, ५८–५९, ६२–६४)*

अथाशुभसूचकान् शकुनान्–

**वन्ध्याचर्मतुषास्थिसर्पलवणाङ्गारेन्धनक्लीबविट्**
**तैलोन्मत्त्वसौषधारिजटिलप्रव्राट्तृणव्याधिताः।**
**नग्नाभ्यक्तविमुक्तकेशपतितव्यङ्गक्षुधार्ता असृक्**
**स्त्रीपुष्पं सरठः स्वगेहदहनं मार्जारयुद्धं क्षुतम् ॥ ४० ॥**



अब यात्रा में होने वाले अशुभ शकुनों का विवरण दिया जा रहा है। बांझ महिला, चमड़ा, भूसी, हड्डी, साँप, नमक, अङ्गार, ईंधन, नपुंसक, विष्ठा, तेल, पागल, चर्बी, दवा, शत्रु, जटाजूट संन्यासी, तृण, रोगी, नग्न, उबटन लगाये हुए, मुक्त केश वाला, पतित, अङ्गभङ्ग व्यक्ति, क्षुधापीड़ित व्यक्ति, खून, रजस्वला महिला, गिरगिट, अपने गृह को जलता हुआ देखना, बिल्लियों का युद्ध तथा सम्मुख छींक को अशुभ सूचक जानना चाहिए।

**काषायी गुडतक्रपङ्कविधवाकुब्जाः कुटुम्बे कलि–**
**वस्त्रादेःस्खलनं लुलायसमरं कृष्णानि धान्यानि च।**
**कार्पासं वमनं च गर्दभरवो दक्षेऽतिरुङ्गर्भिणी**
**मुण्डार्द्राम्बरदुर्वचोऽन्धबधिरोदक्या न दृष्टाः शुभाः ॥ ४१ ॥**

इसी प्रकार गेरुआ वस्त्रधारण करने वाले यति, गुड़, छाछ, कीचड़, विधवा, कुब्जा, परिवार में झगड़ा, वस्त्र का शरीर से गिर जाना, भैंसे का युद्ध, काला धान्य (उड़द, तिलादि) कपास, वमन, दाहिने भाग में गदहे का रेंकना, अधिक क्रोधी, गर्भिणी स्त्री, सिर मुण्डा व्यक्ति, गीला वस्त्र, गाली गलौज या दुर्वचन, अंधा, बहरा व्यक्ति यदि सामने ही दिखाई दें तो यात्रा शुभ, सुखद और फलदायक नहीं होती।

*मत्स्यपुराण के शकुनाध्याय में नाना शकुनापशकुनों की गणना इस प्रकार बताई गई है– अथेष्टानि प्रवक्ष्यामि मङ्गल्यानि तथानघ। श्वेताः सुमनसः पृष्ठा पूर्णकुम्भस्तथैव च॥ जलजाः पक्षिणश्चैव मांसमत्स्यस्यपार्थिवाः। गावस्तुरङ्गमो नागो वृद्ध एकः पशुस्त्वजा॥त्रिदशाः सुहृदो विप्रा ज्वलितश्च हुताशनः। गणिका च महाभागा दूर्वाचार्द्राश्चगोमयम्। रुक्मं रूप्यं च ताम्रं च सर्वरत्नानि चाप्यथ॥ औषधानि च सर्वज्ञा यवाः सिद्धार्थकास्तथा। खड्गं पात्रं पताका च मृत्तिकायुधपीठकम्॥ राजलिंगानि सर्वाणि शवं रुदितवर्जितम्। घृतं दधि पयश्चैव फलानि विविधानि च॥ स्वस्तिवृद्धिनिनादश्च नद्यावर्तः स कौस्तुभः। वादित्राणां शुभः शब्दो गंभीरः सुमनोहरः॥ गांधारषडजऋषभा ये गीताः सुस्वराः स्वराः। वायुः सशर्करोत्युष्णः सर्वविघ्नविनाशकृत्॥ प्रतिलोमस्तथा नीचो विज्ञेयो भयकृद्द्विजः। अनुकूलो मृदुः स्निग्धः सुखस्पर्शः सुखावहः॥ शस्तान्येतानि धर्मज्ञ यत्रस्यान्मनसः प्रितम्। मनसस्तुष्टिरेवात्र परमं जललक्षणम्॥ मनोत्सुकत्वं मनसः प्रहर्षः शुभस्य लाभो विजयप्रवादः। मङ्गल्यलब्धिः श्रवणं च राज्ञां ज्ञेयानि नित्यं विजयावहानि॥ (२४३, १४–२८)*

उक्त शकुन वर्णन न्यूनभेद से विष्णुधर्मोत्तरपुराण (खण्ड २, १६३, १७–३०)

Scanned with CamScanner

में 'अथेष्टानि प्रवक्ष्यामि मङ्गल्यानि तथानघ' श्लोकानंतर उद्धृत किया गया है। शकुन वर्णन नारदपुराण (पूर्वभाग, द्वितीय पाद, ५६, ६९८-७९९) में भी उपलब्ध है।

नारदसंहिता (३३, ८७, ९०) में कहा गया है- प्रज्वलाग्निः शुभंवाक्यं कुसुमेषु सुरागणाः॥ गंधपुष्पाक्षतच्छत्रचामरांदोलका नृपाः। भक्ष्यं शुभफलं चैवभोऽश्वाजौ दक्षिणे वृषः॥ मत्स्यं मांसं सुधौतं च वस्त्रं श्वेतवृषध्वजः। पुण्यस्त्री पूर्णकलशरत्नशृंगारगोद्विजाः। भेरीमृदङ्गपटहशङ्खरागादिनिस्वनाः। वेदमङ्गलघोषः स्युर्यायिनां कार्यसिद्धिदाः॥

अथावश्यककर्तव्यायां यात्रायां विरुद्धे शकुने जाते किं कर्तव्यम्-

**आद्येऽपशकुने स्थित्वा प्राणानेकादश व्रजेत्।**
**द्वितीये षोडश प्राणांस्तृतीये न क्वचिद् व्रजेत्॥ ४३॥**

आवश्यक कार्य के लिए ही यात्रा करनी हो तो अपशकुन होने पर भी निम्नानुसार उपाय करना चाहिए। यदि यात्रा में पहली बार अपशकुन हो तो ११ श्वास तक रुकें और फिर यात्रा करें। दूसरी बार अपशकुन हो तो १६ श्वास तक ठहर जाएं फिर प्रयाण करें और यदि तीसरी बार फिर अपशकुन ही हो तो यात्रा कदापि नहीं करें।

*यही मत श्रीपति भट्टाचार्य का है कि यात्रा में पहली बार अपशकुन होने पर राजा को प्रतीक्षा करनी चाहिए। उसे पांच या छह श्वांसा ठहर कर अथवा प्राणायाम कर कदम बढ़ाना चाहिए। द्वितीय बार पुनः अपशकुन हो जाए तो आठ श्वास रुके किंतु यदि तीसरी बार भी अपशकुन हो जाए तो प्रस्थान को सर्वथा रोक देना चाहिए- आद्ये विरुद्धे शकुने प्रतीक्ष्य प्राणान्नृपः पञ्च च षट् प्रयायात्। अष्टौ द्वितीये द्विगुणांस्तृतीये व्यावृत्य नूनं गृहमभ्युपेयात्॥ (ज्योतिषरत्नमाला १५, ७०)*

*नारद संहिताकार का मत है- आदौ विरुद्धशकुनं दृष्ट्वा यायीदेवताम्। स्मृत्वा द्वितीये विप्राणां कृत्वा पूजां निवर्तयेत्॥ (नारदसंहिता ३३, ९१)*

इति श्रीवास्तुशास्त्रे शिल्पदीपक ग्रंथे नामर्क्षादिग्रहवासद्वारगृहप्रवेशमुहूर्तलक्षणम् नाम/षष्ठप्रकरणम् ॥ ६ ॥

ग्रंथ समाप्तः।

*अथ परिशिष्टे*

# अथ शिलान्यासपद्धतिः

**जगदम्बावलम्बाय निरालम्बाय शूलिने।**
**जगत्त्रयमुटुम्बाय नमः साम्बाय शम्भवे॥ १॥**

यजमानः सस्त्रीकः शुचिः प्राङ्मुख उपविश्य दीपं प्रज्वलय्याचम्य प्राणानायम्य शान्तिपाठादि पठित्वा कुश-यव-जलादीन्यादाय सङ्कल्पं कुर्यात्। ॐ तत्सदद्य अमुकोऽहं गृह (देवालय) निर्माणाय शिलान्यासं करिष्ये। तत्पूर्वाङ्गत्वेन गणपति पूजनं स्वस्तिवाचनं च करिष्य इति सङ्कल्पं कुर्यात्।

(१) वास्तुशान्तिकरणपक्षे 'तत्रादौ सर्वोपद्रवशान्तिपूर्वकम् आयुरारोग्य-पुत्रपौत्रद्विपद-चतुष्पद-धनधान्यादिसमृद्धये ग्रहयज्ञसहितां वास्तुशांति करष्यि' इति च सङ्कल्पयेत्। तत उपशिलासहिताः पञ्चशिलाः (२) पीठे संस्थाप्य ताम्रमयान् मृन्मयान् वा द्वाविंशतिकलशान् आजिघ्रेति संस्थाप्य तेषु (३) मृत-पञ्चपल्लववृक्षीयकषाय-गन्ध-गोमूत्र-गोमय-मिलितपञ्चगव्य-दुग्ध-गन्धोदक दधि-गन्धोदक-घृत-गन्धोदक-मधु-गन्धोदक शर्करा-गन्धोदक-फल-रत्न-वृष-शृङ्गोदक-सप्तधान्य-तीर्थ जल-गन्धान् क्रमेण प्रक्षिप्य शिला वस्त्रेणाच्छाद्य मन्त्रैः स्नापयेत्।

तद्यथा-प्रथमं सप्तमृत्तिकोदकेन- ॐ अग्निर्मूर्द्धा० अश्वत्थ-प्लक्षवटो-दुम्बर-वेतसमूलसंभवैः पञ्चकषायैः ॐ यज्ञायज्ञा वो अ० इति, गायत्र्या गोमूत्रेण, गन्धद्वारामिति गोमयेन, गन्धद्वारामिति गन्धोदकेन, पयःपृथिव्याम् इति मिलितपञ्चगव्येन, गन्धोदकेन, दधिक्राब्ण इति दध्ना, गन्धोदकेन, घृतवती इति घृतेन, गन्धोदकेन, मधुव्वाता इति घृतेन, गन्धोदकेन, आयंगौः इति शर्करया, गन्धोदकेन याः फलिनीरिति फलेन परिवाजपति-रिति रत्नोदकेन, हिरण्यगर्भ इति सुवर्णोदकेन, हविष्मतीरिति वृषशृङ्गोदकेन, ओषधय इति सप्तधान्योदकेन, इमं मे इति तीर्थोदकेन, गन्धद्वारामिति गन्धोदकेन च संस्नाप्य वस्त्रेण परिमार्ज्य सुवर्णादिशलाकया कुङ्कुमादिना नन्दा-भद्रा-जया-रिक्तापूर्णेति नाम्नोषु पञ्चसु शिलासु क्रमेण (४) पद्मम् सिंहासनम्, तोरण-छत्रे कूर्मम् चतुर्भुजं विष्णु च

Scanned with CamScanner

लिखित्वा शिलानां मूलेषु अभिषेकं कुर्यात पञ्चभिर्मन्त्रैः क्रमेण (५) आ ब्राह्मन, ॐ भद्रं कर्णे-भिः, ॐ जातवेदसे, ॐ यमाय त्वाऽङ्गिरस्वते, ॐ पूर्णा दर्वि, इति।

ततः शिलानां मध्येऽभिषिञ्चेत्-ॐ नाभिर्मे १० ॐ ब्रह्म यज्ञानम्, ॐ विष्णो रराटम् ॐ नमस्ते रुद्र ॐ इमं देवाः इति मन्त्रैः।

ततः शिलानां शिरस्सु (६) क्रमेण ब्रह्माणं, विष्णुम्, रुद्रम, ईश्वरम्, सदाशिवं च क्रमेणावाह्य ततो नन्दायै नमः नन्दामावाहयामि इत्येवं भद्रा जया रिक्ता पूर्णाश्चावाह्य सम्पूज्य अग्निं प्रतिष्ठाप्य ॐ नन्दायै स्वाहा ॐ भद्रायै स्वाहा ॐ जयायै स्वाहा ॐ रिक्तायै स्वाहा ॐ पूर्णायै स्वाहा इति घृतेनाष्टोत्तरशतमष्टाविंशत्यष्टान्यतमसङ्ख्यया हुत्वा याते रुद्र शिवा तनूरघोरा इति अष्टोत्तरशतमाहुतीः शान्त्यर्थ हुत्वा प्रोक्षणीस्थान् संस्रवान् स्थण्डिलस्योत्तरतः स्थापितकलशे निक्षप्य (७) तेनोदकेन शिलानां मूलमध्यश्रिः सकुशैरभिषिच्य भूमिं संपूज्य वास्तु-भूमेरीशानादिकोणेषु चतुर्हस्तं गर्त खात्वा गोमयेनोपलिप्य तत्र सर्पाकारं वास्तुपुरुषमक्षतैर्लिखित्वा 'आवाहयाम्यहं देवं भूमिष्ठं चाप्यधोमुखम्। वास्तुनाथं जगत्प्राणं पूर्वस्यां प्रथमाश्रितम्।' इत्यावाह्य ॐ वास्तोष्पते इति संपूज्य प्रार्थयेत्-

ॐ वास्तु पुरुष नमस्तेऽस्तु भूशय्याभिरत प्रभो।
मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्ध कुरु सर्वदा॥ इति।

(८)तत ईशानकोणे उपशिलां संस्थाप्य तस्या मध्यगर्ते मध्वाज्य-पारदपञ्चरत्नगर्भितं पिहितमुखं पद्मकलशं (९) गन्धपुष्पादिभिरलङ्कृतं निधाय ॐ पद्माय नमः ॐ आधारशिलायै नमः इति संपूज्य तस्य वामभागे दीपं संस्थाप्य (१०) कलशोपरि प्राकशिरसं नन्दाम् ॐ स्थिरो भव ॐ नाभि मे इति मंत्रद्वयेन संस्थाप्य संपूज्य प्रार्थयेत्-ॐ नन्दे त्वं नन्दिनी पुंसां त्वामत्र स्थापयाम्यहम्। वेश्मनि त्विह सन्तिष्ठ यावच्चन्द्रार्कतारकाः। आयुः कामं श्रियं देहि देववासिनि नन्दिनी। अस्मिन् रक्षा त्वया कार्या सदा वेश्मनि यत्नतः'। इति। एवमेव आग्नेयादिकोणतुष्टये मध्ये च चतुर्हस्तगर्त खात्वा वास्तुं विलिख्य संपूज्य आधारशिलासु कलशान् संस्थाप्य तद्वामपार्श्वेषु दीपान् संस्थाप्य तत्र शिलाः संस्थाप्य संपूज्य प्रार्थयेत्-

*भद्राप्रार्थनामन्त्रः*-भद्रे त्वं सर्वदा भद्रं लोकानां कुरु काश्यपि। आयुर्दा कामदा देवि सुखदा च सदा भव। त्वामत्र स्थापयाम्यद्य गृहेऽस्मिन् भद्रदायिनि।

*जयाप्रार्थनामन्त्रः*- गर्गगोत्रसमुद्भूतां त्रिनेत्रां च चतुभुऽजाम्। गृहेऽस्मिन् स्थापयाम्यद्य जयां चारुविलोचनाम्। नित्यं जयाय भूत्यै च स्वामिनी भव भार्गवि।



*रिक्ताप्रार्थनामन्त्रः*- रिक्ते त्वं रिक्तदोषघ्ने सिद्धिभुक्तिप्रदे शुभे। सर्वदा पर्वदोषघ्नि तिष्ठास्मिंस्तत्र नन्दिनि।

*पूर्णाप्रार्थनामन्त्रः*- पूर्णे त्वं सर्वदा पूर्णान् लोकानां कुरु काश्यपि। आयुर्दा कामदा देवि धनदा सुतदा तथा। गृहाधारा वास्तुमयी वास्तुदीपेन संयुता। त्वामृते नास्ति जगतामाधारश्च जगत्प्रिये'।

ततः सदीपं पायसबलिं माषभक्तबलिं वानन्दाये नमः इत्यादिनाममन्त्रेर्दत्वा शान्तिकाध्यायं च पठित्वा दक्षिणां दत्वा ब्राह्मणभोजनं भूयसीं च संकल्प्य कर्मेश्वरार्पणं कुर्यादिति शिलान्यासः।

इति शुभम्।

---

१. 'प्रासादभवनोद्यानप्रारम्भे परिवर्तने। पुरवेश्मप्रवेशेषु सर्वदोषापनुत्तये' इति मात्स्यात् सर्वदोषापनोदफलार्थ गृहप्रारम्भ-गृहप्रवेशयोर्वास्तुशान्तिरावश्यकी॥ गृहप्रारम्भश्च शिलान्यासरूप एव। सवास्तुशान्तिशिलान्यासे मण्डपकुण्डादिकरणं च सति संभवे विधेयम्। मण्डपसत्वे सदस्य-होतृ-द्वारपालादिवरणमप्यावश्यकमिति। वास्तुशान्तिश्च केवलं पौराणकी शिलान्यासेऽनुष्ठेया 'न समुचिताया गृहप्रवेश एवं विधानादिति।

२. शिलाश्चशिरःपृष्ठे षुकृतचिह्नाःपाषाणमय चेद गृहं तदा एकविंशत्यङ्गल-दीर्घाःसप्तदशाङ्गुलदीर्घाः, त्रयोदशाङ्गुलदीर्घाः नवाङ्गुलदीर्घाः क्रमेण विप्र क्षत्रिय-वैश्य-शूद्राणाम् तथा दैर्ध्यप्रमाणार्धप्रमाणविशालाः, विशालतोऽर्धोच्छ्रयाश्चतुरस्राः समाः श्लक्ष्णाः कार्याः।'शिलाप्रमाणं क्रमशः प्रदिष्टं वर्णानुपूर्व्येण तथाऽङ्गुलानाम्। अथैकविंशद्-धन-विश्व-नन्दाविस्तारके व्यासमितं तर्द्धम्। तर्द्धमान स्थल पिण्डिका स्यात् ऊर्ध्वाधिका न्यूनतरा न कार्या' इति विश्वकर्मोक्तेः।'एकविंशद् द्विजाज्ञाणां क्षत्राणां दश सप्त च। त्रयोदश तु वैश्यानां शूद्राणां' तु नवाङ्गुलम्' इति स्मृत्यन्तराच्च। प्रासादे तु हस्तायामाः कार्याः- 'प्रासादादौ विमानेन न्यस्तव्याः सुमनोहराः। चतुरस्राः समाः कृत्वा समन्तादधस्तसंमिताः इति विश्वकर्मोक्तेः। ऐष्टकं चेद् गृहं तदा वितस्त्यायताः षडङ्गुलविस्ताराः द्वि-चतुरङ्गुलोच्छ्राया इष्टकाः कारयितव्याः।'इष्टकाश्च सुपक्वाः स्युर्द्वादशांगुलसंमिताः। विस्तारस्य त्रिभागेण वैपुल्येन समन्विताः' इत्यग्निपुराणे (अ० ४५) उक्तेः। आयामतुल्यविस्तारकरणे चतुरङ्गुलस्थूलाः तदर्धविस्तारकरणेद्व्यङ्गुलस्थूला। इष्टकाः कार्याः शिलाविस्तारस्य द्विविधस्य दृष्टत्वेन इष्टकाविस्तारस्यापि तथाविधस्य ग्रहीतुमुचितत्वादिति।

३. मृद्भिर्गोमयगोमूत्रकाषायैर्गन्धवारिणा। विधिना पञ्चगव्येन स्नानं पञ्चामृतेन च। गन्धतोयान्तरं कुर्यात्रिजनामाङ्किताणुता। फलरत्नसुवर्णानां गोशृङ्गसलिलैस्ततः। चन्दनेन समालभ्य वस्त्रैराच्छादयेच्छिला' इति स्नानप्रकारः अग्निपुराणे (अ० ९२) उक्तः। मन्त्राश्च 'अग्निर्मूर्द्धा' इत्यादयो विश्वकर्मप्रकाशे (अ० ५ श्लो० ६४) उक्ताः।

४. नन्दा-भद्रा-जया-रिक्ता-पूर्णा इत्याख्यासु पञ्चसु शिलाषु क्रमेण पद्म, सिंहासनं, तोरणच्छत्रे, कूर्म, चतुर्भुजं विष्णुं च टङ्केण लेखयेत्। नन्दादिशिलानां च स्थापनार्थ किञ्चित्तदधिकप्रमाणान् शिलामयानेवाधारान् कल्पयेत् ता उपशिला इत्युच्यन्ते। उपशिलासु पद्मादि निधिकुम्भस्थापनार्थ मध्ये एकैकं गर्तं कारयेत्।

५. 'आ ब्रह्मन्निति नन्दाया भद्रं कर्णेति वै तथा। जातवेदसेति. च तथा यमायत्वेतिमन्त्रकेः। पूर्णा दर्वीति पूर्णायाः क्रमेणापि समाचरेत्। मूले, मध्येऽपि च तथा नाभिमेति च मन्त्रकैः ब्रह्म यज्ञानमिति च विष्णो रण्टमिति तथा। नमस्ते रुद्र इति च इमं देवेति संस्नपेत्।

Scanned with CamScanner

६. शीर्षे चावाहनं कुर्यात् तद्विष्णोः परमं पदम्। इदं विष्णुः समख्ये च त्र्यम्बकं मूर्द्धानं दिवः' इति नन्दादिशिला मध्यशिरःसु अभिषेकः, शिरःसु आवहनं चोक्तम्।

७. 'प्रोक्ष्याः शान्तिजलैः शिलाः इत्याग्निपुराणात् (अ० ९२) संस्त्रवज-लैरभिषेकः।'

८. अनेन हि खननेऽपि ईशानादिक्रम एव लभ्यते। 'खननावटसंस्कारे प्रारम्भो वह्निगोचरः' इत्यादि संपूर्णवास्तुभूमिनिखनने आरम्भस्य आग्नेये कर्तव्यताबोधकम्। शिलान्यासस्य आग्नेयोपक्रमपक्षे तत्र खननोपक्रम कर्तव्यताबोधकं वा। कन्या-सिंहे-तुलायां भुजंगपतिमुखं शम्भुकोणेऽग्निखातं वायव्ये स्यात्तदास्यं त्वलिधनुमकरे ईशखातं वदन्ति। कुम्भे मीने च मेषे निर्ऋतिदिशि मुखं, रवात वायव्य कोणे अग्नेः कोणे मुखं वै वृषमिथुनयोः कर्कटे, रक्षखातम्। अस्थार्थः-सिंहकन्या, तुलासु वास्तुसर्पस्य मुखमीशानकोणे भवति। अतः खातं खातस्योपक्रम सिंहकन्यातुलाख्ये सूर्ये अग्निकोणे कार्यः। वृश्चिकादिराशित्रयेसंस्थे सूर्ये सर्पास्यं वायव्ये भवति, ततस्तदा ईशाने खातेपक्रम वृषादिराशित्रये सूर्ये अग्निकोणे सर्पमुखम् नैर्ऋत्ये तदा खातोपक्रम इति। इदमपि शिल्पिशास्त्रवचनं भित्यर्थ समन्ततः कर्तव्यस्य, भूमिदोषनिवारणार्थ समस्तवास्तु भूमौकर्तव्यस्य वा खातस्योपक्रमे दिग्विशेषनियामकम्। ननुशिलान्यासयकर्त्तव्यखातस्योपक्रमे दिग्विशेषनियामकम्। तत्र सर्वदा दिग्विशेषस्य व्यवस्थितत्वेन कालविशेषे दिगन्तरमनियमयितुशक्यत्वात्। इत्थमेव सामञ्जस्ये बाध्यबाधकभाव-कल्पनाऽनवकाशादिति दिक्।

९. पद्मादिनिधिकुम्भाश्च ताम्रमया मृन्मया वा विप्रादीनां क्रमेण पञ्चाङ्गुलाः, सार्द्धद्व्यङ्गुलाः, सपादाङ्गुलाः पञ्चकार्याः। शूद्राणामपि सपादाङ्गुला एवं, चतुर्थमानस्यानुक्तेः 'ध्रुवे शिलायास्तु ततः खनित्वा कुम्भं प्रतिष्ठाप्य शराङ्गुलीयम्। विप्रादिवर्णानुगतः प्रशस्तः तदर्धमानन्तु तदर्धमानम्' इति विश्वकर्मोक्तेः। कुम्भानां पिधानानि च कार्याणि।

१०. 'ततः सुलग्ने संप्राप्ते पञ्च वाद्यानि वादयेत्। नन्दां प्रगृह्य च शिलां तथाधारशिलां न्यसेत्॥ ८२॥ तस्योपरि न्यसेत्पद्मकलशं मन्त्रवर्जितम्। सर्वौषधिजलोपेते पारदाज्यघृतप्लुतम्॥ ८३॥ पिहितं रत्नगर्भ च तेजोराशिभिरञ्जतम्। सदाशिवस्य रूपां च ध्यात्वा पञ्चोपचारकैः। संपूज्य दीपं विन्यस्य वामभागेऽथ गर्तके। तत्रोपरि न्यसेन्नन्दां संपूज्य च यथाविधि॥ ८५॥ नाभिर्मेति च मन्त्रेण स्थिरो भवेति वै तथा। प्रार्थनां च तथा कुर्यादागमोक्तेन मन्त्रवित् ॥ ८६॥ नन्दे त्वं॥ ८७॥ ८८॥ महापद्मं न्यसेत्तत्र (आधारशिलायाम्) पूजयेद्रत्नगर्भितम्। तत्र भद्रां च संस्थाप्य पूजयेत्तं च मन्त्रकैः॥ ८८॥ भद्रं कर्णेति च तथा स्थापयेद्वारुणैस्तथा भद्रे त्वं॥ ९०॥ ९१॥ आधारोपरि विन्यस्य कलशं शङ्खसंज्ञकम्'। कोणे संपूज्यविधिवज्जयां संस्थापयेत्ततः॥ ९२॥ जातवेदसेति मन्त्रेण पूर्वोक्तेन च मन्त्रतः गर्गगत्रस०॥ ९३॥ ९४॥ आधारोपरिविन्यस्य विजयं कलशं ततः। रिक्तां संस्थापयेत्तत्र मन्त्रेणानेन मन्त्रवित्॥ ९५॥ त्र्यम्बकं यजामहेति तथा वरुणमंत्रकैः पूजयेत्प्रार्थयेत्तद्वद्रिक्तां रिक्तार्त्तिहारिणीम्॥ ९६॥ रिक्ते त्वं.॥ ९७॥ आधारे विन्यसेन्मध्ये सर्वतोभद्रसंज्ञकम्। पूर्ण रत्नान्वितं पुष्टं सर्वमन्त्राभिमन्त्रितम्॥ ९८॥ तं च संपूज्य विधिवद् ध्यात्वा तत्र सदाशिवम्। तत्रोपरि न्यसेत्पूर्णा पूर्णानन्दप्रदायिनीम्॥ ९९॥ पूर्णा त्वं.॥ १००॥ १०१॥ पूर्णा दर्वीतिमन्त्रेण इमं देवेति वै तथा। मूर्द्धानं दिवेति तथा शान्तिमन्त्रैस्तथैव च॥ १०२॥ सहस्रशीर्षेति षोडशभिरग्निमीडेति वै तथा। इषे त्वोर्जेत्वेत्यग्न आयाहीति तथा पुनः॥ १०३॥ शन्नो देवीति मन्त्रेण स्थापयेत्प्रयतः शुचि' इति शिलानां स्थापन प्रकार उपदिष्टो विश्वकर्मप्रकाशे (अ० ५)

'इति वास्तुविधानं तु कृत्वा ताः स्नानमण्डपात्। समानीय शिलास्तत्र सूत्रधारो गुणान्वितः। तत्र दिक्साधनं कुर्यात् गृहमध्ये सुसाधिते। ईशानादिक्रमेणैव स्वर्णकुद्दालकेन तु। खनित्वा कोणदिग्भागे आग्नेये च विशेषतः। नाभिमात्रे तथा गर्ते शिलानां स्थापनं शुभम्' (अ० ५, श्लो० ४२-४४) 'गृहकोणेषु सर्वेषु पूजां कृत्वा विधानतः। नंदायां पद्मालिख्य ईशानमादितः कृत्वा प्रादक्षिण्येन विन्यसेत्। नन्दा-भद्रा-जया-रिक्ता-पूर्णानाम्नीर्यथाक्रमम्। नंदायां पद्मालिख्य भद्रासिंहासन तथा। जयायां तोरणच्छत्रे रिक्तायां कूर्ममेव च। पूर्णायां च चतुर्बाहुं विष्णुं संलेखयेद्बुधः। भूर्भुवः स्वरिति तथा तासामावाहनं स्मृतम्। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईशानश्च सदाशिवः। भूतान्येतानि पञ्चैव पञ्चस्वावाहयेत्पुनः। स्नपनं च ततः कुर्याद् विधिदृष्टेन च कर्मणा इति।' विश्वकर्मप्रकाशेऽभिहितभ् (अ० ५, ५७-६२)

## अकरादिक्रमानुसार श्लोकानुक्रमणिका


अ

अकचटतपयशह या १, ३०

अः प्रश्नेस्याद्यदिप्राच्यां १, ३१

अग्निकर्मसु सर्वेषु २, १२

अग्निनक्षत्रगे सूर्ये ६, १५

अग्रतो हरते ह्यायुः २, ५०

अचलं चालयेद्वास्तुं ४, ३३

अजैकपादहिर्बुध्न्यशक्र ६, १४

अग्रेर्दिशि तु कः प्रश्ने १, ३२

अग्नौ राक्षसवायुशङ्कर १, २८

अथो नृपाणां भवनानि ५, १

अधोमुखानि कार्याणि २, ४०

अनुराधा तथा स्वाति २, ४१

अन्योपस्करकर्मादौ २, १८

अर्लींदाश्चैवलिंदाश्च ४, २५

अश्वत्थोदुम्बर वट्प्लक्षा १, ४९

अश्वोऽश्विनी ३, २२

अश्विन्यादित्रये मेषः २, ४८

अश्विन्यादिकभत्रयं फणिनिभं ३, २८

आ

आदित्ये हरिकर्कनक्र १, १८

आग्नेय्या खननं कुर्यात् १, ४१

आयः कल्प्यो हस्तमेयैः २, ३१ अ

आयर्त्रक्षं व्ययस्तारा २, १

आयामं यदि क्षेत्रं २, ३१

आयुधेषु समस्तेषु २, १३

आशासं मंदिरं कृत्वा ४, ४९

आसने देवपीठेषु २, ११

इ-ई

इन्द्रो यमश्च राजा ३, १०

ईशप्राच्योरन्तरे गर्द्दभाना ५, ३३

ईशो मारुतविश्ववह्नि १, ८

उ-ऊ

उच्चाटनं रोगभयं च १, ९

उच्छ्रयेनभिभुक्तै ४, ५

उत्तानां अर्थनाशायाऽधोमुखा ४, १०

उत्सङ्गनामाभिमुखप्रवेशः ३, ३०

उत्सेधार्द्धविनिर्गतं ५, २६

उदीच्यां दिशि यः प्रश्ने १, ३७

उदुंबर समाकार्या ४, ६

उपर्युपरि भूमिस्तु ४, १९

उपर्युपरि यद्वैश्म ४, १८

ए-ऐ

एकहस्ते तु प्रासादे ३ ,४०

ऐशान्यां दिशि शः प्रश्ने १, ३८

ऋ

ऋऋलृलृविसर्गान्त २, २३

**क**

कन्यादि त्रितये चैवं १, ४२

कन्यादित्रिषु पूर्वतो १, १९

कम्बासूत्राम्बुपात्रं वहति १, २

करवीर-मुनिद्राक्षा-जाती १, ५०

कर्णाधिकं च हीनस्य ४, २६

कल्याणं कुरुते सिंहो २, ५

कुक्षौ द्वारं न कर्त्तव्यं ४, २१

कूडागारे गवाक्षादि ४ ,१७

कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाश ६, ७

कृत्तिका मूलमश्लेषा २, ३५

कृतिकादि सप्त सप्त २, ४९

क्षेत्रादिसंज्ञा नागेन्द्रे ३, १३

**ख**

खर्जूरदाडिमीरम्भा १, ४८

खातं भूमिपरीक्षणे १, २६

**ग**

गजश्च गजशालाय २, १७

गजे भद्राणि पश्यंति २, ८

गुणयेदष्टभिः क्षेत्रफलं ४, ५१

गुणाश्च बहवो यत्र ४, ३५

गेहस्योदयकं क्षेत्रफलेन ३, २०

गेहोदयन्तु विभजेन्नवधा षडंशः ५, १५

गोसिंहनक्रमिथुनं निवसेन्न ६, २

ग्रामाधिपा ये तु ५, ७

ग्रामैकलक्षद्वयमस्ति यस्य ५, ३

गृध्रकाककपोताश्च ४, ३२

गृहक्षेत्रस्य यदक्षं २, ४७

गृहं चतुर्हस्तमितं करादिवृद्ध्या ५, १

गृहेशतत्स्त्रीसुखवित्तनाशो ६, ४

**च**

चतुर्विंशेशतोशाला४, ३

चैत्रे शोककरं विद्यात् १, १४

**छ**

छाया चानूरेणुकेशाग्रलिक्षा १, ६

**ज-झ**

जानुमात्रं खनेद् भूमिमथवा १, ४०

जीवेंदुरवयो भूमि २, ५८

जीर्णं गेहं भित्तिभग्नं ५, २९

जीर्णे गृहेऽग्न्यादिभयान्नवेऽपि ६, १८

जीवार्कविच्छुक्रशनैश्चरेषु ६, ८

ज्येष्ठा प्रतोली तिथिहस्तसंख्या ५, १४

ज्येष्ठार्यम्णेशनीराधिपभयुगयुगं ३, २९

**त**

तंतुविततादिस्वरे २, १६

तद्वेश्म पञ्चाशदपि द्विहीनं ५, ५

तद्दशघ्नं भवेदायु ४, ५४

तत्र पुत्रांश्च पौत्रांश्च ४, १५

तलवेध तालवेधो ४, २०

तः प्रश्ने पश्चिमायां तु १, ३५

तपश्चर्यादिकर्माणि ४, ४४

तारे मार्कटिके ध्रुवस्य १, २१

तालो द्वादशमात १, ११

तिथ्यर्काष्टाष्टि गो ४, ५८

तिथ्यष्टवेदरामेषु २, २२

तृतीयैकादशे मैत्री २, ५३

Scanned with CamScanner

त्रिकोणं पञ्चकोणं च ४, ३८
थ
थरभङ्गो यदा यस्य ४, १
द
दक्षिणकोणे पूर्वविभागे १, ४३
दण्डदीर्घ षडंशेन ३, ४२
दमनं कृषिवाणिज्यं २, ४३
दिक्शालान्तं ह्येकशालादिगेहं ५, ३८
दिङ्मूढेन करे वास्तु ४, १२
दिशियो विदिशैश्चैव ४, १३
दिक्षु पूर्वादितः शालाध्रुवा ४, ५७
दीपालयो दक्षिणदिग्विभागे ५, १६
दुष्टो भूतसमाश्रितोऽपि १, ४७
देवालयं वा भवनं ५, २२
देवालयं वा भवनं ३, ३८
दैर्घ्ये शशिकलाङ्गुलोत्तमशिला ५, १२
दैर्घ्ये सार्द्धशताङ्गुलं च ५, २०
दैर्घ्ये सार्द्धशताङ्गुलं च ३, ३६
द्राक्षा-मुनि-करवीरर्जाती १, ५२
द्यूतारम्भौ निधिः स्थाप्यो २, ३
द्यूनाम्बरे यदैकोऽपि ६, ११
द्वाराग्रे खटकीमुखं च ३, ३२
द्वाराग्रे खटकीमुखं च ५, १७
द्वारमध्ये गृहाणान्तु ४, ८
द्वारमध्ये ग्रहणान्तु ४, ९
द्वारं विद्धमशोभनं च ३, ३५
द्वारसर्वेषु गेहानां ४, ४५
द्वारोर्ध्वे यद् द्वारमस्य ३, ३३
द्वारोर्ध्वे यद् द्वारमस्य ५, १८
द्वारस्तंभगवाक्षं तु ४, ४६
दृष्टी रुद्रकरालं ४, ३१
ध
ध्रुवधान्ये जयनंदो ४, ५९
धूम्रस्थाने यदा शान्तो ३, ५
ध्वजः पुरुषरूपश्च २, २६
ध्वजः सर्वेषु दातव्यो २, २१
ध्वजादिकाः सर्वदिशि ध्वजे ६, ३
ध्वजादीनां चतुर्णां २, २५
ध्वजाद्याश्चैव शेषं वै २, २
ध्वजा दण्डप्रमाणेन ३, ४३
ध्वजे शान्तः शुभः ३, ४
ध्वजो गजो वृषो २, ४
ध्वाङ्क्षश्चैव प्रदातव्यः २, १९
ध्वाङ्क्षश्चैव समुदिष्टं २, ३
न
नक्षत्रं वसुभिर्भक्ते ३, १
नवतिघ्ने फले नागैर्युक्ते ४, ५५
नलहीनं तद् जानियात ४, ५०
नैको लघुर्वामदिशाविभागे ५, २३
नैर्ऋत्यां दिशि टः १, ३४
प
पञ्चभाग द्वयं कृत्वा ४, ४
पञ्चायुतेशो नृपमण्डलीको ५, ४
पदलोपं दिशालोपं ४, ३४
पदहीनं न कर्तव्यं ४, ७
परायुः पञ्चधा प्रोक्तं ४, ५६

Scanned with CamScanner

परीक्षितायां भुवि १, २५
पट्टाभिषेकप्रारम्भः २, ४६
पादयेत् कुछ्रीतं द्वारं ४, ४२
प्रोक्तः प्रवीणैश्चतुराशिकोऽसौ ५, ६
पुनः शुद्धि दिशाजाते ४, ४१
पुर-प्राकार-नगरे ३, १५
पुष्यध्रुवेन्दुहरिसर्पजलैः ६, १२
पूर्णेन्दुतः प्राग्वदनं ६, ५
प्रतिपत्कृष्णपक्षीया १, १७
प्राची मेषतुला रवावुदयति १, २०
प्राक् पश्चिमे मारुतवह्निकोणे ५, ३४
प्राक् शोभा नृपमन्दिरे च ५, ३५
प्रावेशः प्रतिकायका३, ३१
प्रासाद पृथुमानेन दण्डो ३, ३९
पश्याभितोकर्ता ४, ३६
प्रासादे प्रतिमालिङ्गे २, ९
प्रासादे राजगेहे च २, ५१
प्रासादे प्रतिमालिङ्गे ३, ११
प्रद्योतः श्वानसंस्थाने ३, ६
पृथिव्यापस्तथातेजो ४, ५२
पृष्ठे गवाक्षं न ४, ४३
पृष्ठेवाह समं ४, २७
पृष्ठेक्षणानन्तरमेव बाह्यात् ५, २८

फ

फलं नागगुणं षष्ठ्या ४, ५३
फले चाष्टगुणे तस्मिन् २, ३२

ब

बदरी-कदली चैव १, ५१

भ

भञ्जिता लोपिता येन४, ४७
भरणी त्रीणि पूर्वाणि २, ३६
भवनपुरसुराणां सूत्रणे १, ४५
भित्तेमूलं स्थापनीयं १, ४४
भूकार्यमग्निकार्यं च २, ३८
भूपालयार्द्धेन च मन्त्रिगेहं ५, ८
भूमेः प्राक् प्लवनं च १, २७
भूम्यारोहणमूर्ध्वतस्तदुपरि ५, २७
भौमार्करिक्तामाद्यूने चरोने ६, ६

म

मघा मूलं विशाखा च २, ३७
मध्ये न स्थापयेद् ४, २
मनोहरः खरे योज्यः ३, ७
मात्रा प्रोक्ताष्टभिजष्टानि १, ५
मार्गशीर्षे धनप्राप्ति १, १६
माहेन्द्राख्ये गोपुरं द्वि-त्रिभूमिं ५, ३७
मानप्रमाण संयुक्तं ४, २३
मानहीनं न कर्तव्यं ४, ३७
मानं देवगृहादिभूप २, ३०
मेषमर्कटयो वैरं ३, २५
मित्राणि कुजचंद्रेज्योः २, ५७
मित्राणि सूर्यभौमाब्जा २, ५८
मेषवृश्चिकयोभौमः २, ५४
मृगाश्विनी रेवती च २, ३४
मूलराशौ व्ययं क्षिप्त्वा ३, ९

य

यदा पृष्ठे च ४, ४४

यद्धं द्व्यङ्कसुतेशदिङ्मितमसौ ६, १
यदायव्ययसंयोगे यदैक्यं ३, १९
यावद् गृहर्क्षं गणयेत् ३, १७
याम्यां दिशि चस्य प्रश्ने १, ३३
ये द्वापरे भूमिभुजो ५, २
युग्मगृहं भवेत् ४, २८
र
राशिनामलिमीनसिंह १, २२
रुद्रो वायुः विश्वकर्मा १, ७
ल
लग्नाम्बरायेषु भृगुज्ञभानुभिः ६, ९
व
वणिक्कर्मसु सर्वेषु २, १५
वल्मीकि निरुजं नित्यमुषरा १, २९
वापी-कूप-तडागानां २, १०
वामे ज्येष्ठे ४, २९
वायव्यां दिशि पः प्रश्ने १, ३६
वामाङ्गे धनवस्त्रदेवभवनं ५, ३१
वास्तुप्रवेशतो यत् तु ४, १४
वाहनानि च यंत्राणि २, ४२
वैरं चोत्तरफाल्गुन्यश्वियुगलयोः ३, २७
विभवो ध्वाङ्क्ष संस्थाने ३, ८
विवस्वदाख्येऽध्ययनं प्रशस्तं ५, ३६
विविध वणिजः कर्म ३, १४
वृषो वृषभरूपाढ्यः २, २७
श
शतभिषग् रोहिणी च २, ४५
शलाका द्वय कोणस्या ४, ४०
शान्तः पौरः प्रद्योतश्च ३, ३
शस्तमासे सितपक्षे १, ४
शास्त्रोत्तमशास्त्रे शिल्पशास्त्रे १, १
शान्ता मनोहरा ३, १
शालाया नवधा च ५, ११
शुभेमासे सिते पक्षे १,१३
शूद्रस्य वै गजः प्रोक्तं २, ६
शूर्पाकारं पृष्ठो ४, १६
शेषमायो मनुष्यस्य २, २४
श्रावणे धनवृद्धिश्च १, १५
श्वानो म्लेच्छगृहे प्रोक्तो २, १४
श्वानो मूलार्द्रयोर्योनिः ३, २३
श्वेता ब्राह्मणभूमिका च १, २३
श्वानैणं सर्पनकुलं३, २६
ष
षष्ट्या वाऽथ ५, १३
स
सन्मुखो राहु पृष्ठवो ४, ३९
सदुग्धवृक्षा द्रविणस्य १, ४६
सप्तमे चोत्तमा प्रीति २, ५२
समानसूत्रे शुभमग्रभित्तिः ४, २४
समो व्ययः पिशाचश्च ३, २
सर्वं द्वारं चीयमानं रुजायै यद्वा ५, १९
सर्वेकुर्कुटरूपेण २, २९
संवर्धनं च वास्तुनां ४, २२
सर्वं द्वारं चीयमानं ३, ३४
सर्वेषां तु सिंहग्रीवाश्च २, २८
सारैः करेज्यान्त्यमघाम्बुमूलैः ६, १३

Scanned with CamScanner

सिंहस्याधिपतिः सूर्यः २, ५५
सिंहासने च शय्यायां ३, १६
सिंहे च विपुलान् २, ७
सुग्रीवे वरुणेऽसुरे गणवरे ५, ३२
सुवृत्तः सारदारुश्च ३, ४१
सुहृदौ वित्सितौ सौरेः २, ६०
सुशीलश्चतुरो दक्षः १,३
सूचिमुखं ४, ३०
सूपर्ण ओतुः सिंहः ३, २१
सूत्राष्टकं दृष्टि नृहस्त १, १२
सूर्यर्क्षाद्युगभैः शिरस्यथ फलं ६, १६
सौम्यायने ज्येष्ठतपोऽन्त्यमाधवे ६, १७
स्तंभिकाकुंभिका ४, ४८
स्तम्भोऽष्टांशसुवृत्तभद्रसहितो ५, २४
स्तम्भो द्वयोर्मध्यगतो न शस्तः ५, २५
स्नेहानुगाश्च मैत्राद्या २, २०
स्याद् भूमिरेका वस्तुहस्तगेहे ५, १०
स्वर्गादि भोगयुक्तेषु ३, १२
स्वक्षेत्रे न पीडयन्ते २, ५६
स्वगणे चोत्तमा प्रीति २, ३३
स्वादे भवेद्या मधुरा सिताभा १, २४
स्वयंमुहु अश्वनाद ४, ११
स्वयमपि च ३, ३७
स्वयमपि च कपाटोद्घाटनं ५, २१
स्वोच्चे शुक्रे लग्नगे वा ६, १०

**ह**

हर्म्यस्यापि समृद्धिता ५, ३०
हषया मध्यमे कोष्ठे १, ३९
हस्तस्वात्योस्तु महिषी ३, २४
हस्तो यत्नात् पुष्प १, १०

Scanned with CamScanner

# उपस्कारक ग्रंथ

**अपराजितपृच्छा** : भुवनदेवाचार्य विरचित, संपादक- पीए मंकड़, बड़ौदा ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, १९५८ ई.

**ईशानशिवगुरुदेव पद्धति**- ईशानशिवगुरुदेव मिश्र विरचितम् - संपादक टी. गणपति शास्त्री, अनंतशयन संस्कृत ग्रंथमाला, क्रमांक-७७, राजकीय मुद्रणालय, त्रिवेंद्रम्, १९२०-२५ ई. पुर्नसम्पादन- पीएन उन्नी, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, १९९० ई.

**काश्यपशिल्प अपर नाम अंशुमद्भेदागम** : काश्यप मुनि विरचित, संपादक- श्रीकृष्ण शर्मा, आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, १९२६ ई.

**क्षीरार्णव** : विश्वकर्माभाषित, संपादक- प्रभाशङ्कर ओघड़भाई सोमपुरा, पालीताणा, १९६७ ई.

**ज्ञानप्रकाशदीपार्णव** : विश्वकर्माभाषित, संपादक- प्रभाशङ्कर ओघड़भाई सोमपुरा, पालीताणा, १९६० ई.

**ज्ञानप्रकाशदीपार्णव ( उत्तरार्द्ध )** : संपादक प्रभाशङ्कर ओघड़भाई सोमपुरा, पथिक सोसायटी, अहमदाबाद, १९७६ ई.

**चतुवर्गचिन्तामणि** : हेमाद्रि विरचित, व्रतखण्ड प्रथमभाग, संपादक- भरतचंद्र शिरोमणि, एशियाटिक सोसायटी ऑफ द बङ्गाल, कोलकता, १८७८ ई. पुनर्प्रकाशन चौखम्बा संस्कृत संस्थान, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी, १९९९ ई.

**जयपृच्छा** : विश्वकर्माकृत, संपादक- प्रभाशङ्कर ओघड़भाई सोमपुरा, पथिक सोसायटी, अहमदाबाद १९७७ ई.

**ज्योतिषरत्नमाला** : श्रीपतिभटविरचित, संपादक -अनुवादक डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, २००४ ई.

**ज्योतिर्निबन्ध** : शूरमहाठश्रीशिवराज विनिर्मित, काशी से शिला मुद्रणविधि से मुद्रित प्रकाशक वे.शा. सं. रा. रा. विनायक शास्त्री शेवगांवकर आदि, विक्रम संवत् १८३४ तथा आनंदाश्रम संस्कृत ग्रंथावलि, पूना (क्रम ८५), संशोधक- रङ्गनाथ शास्त्री व प्रकाशक- विनायक गणेश आपटे, संस्करण १९१९ ई.

Scanned with CamScanner

**ज्योतिर्विदाभरणम्** : कालिदासदैवज्ञ विरचित, संपादक एवं व्याख्याकार- डॉ. रामचन्द्र पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९८७ ई.

**देवतामूर्तिप्रकरणम्**: सूत्रधार मण्डन विरचित, संपादक अनुवादक- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, न्यू चंद्रावल, दिल्ली २००३ ई.

**नारदपुराण** : महर्षि वेदव्यास प्रणीत, कल्याण मासिक का विशेषांक, संपादक हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर, १९५४ ई.

**नारदसंहिता** : नारद प्रणीत, व्याख्याकार पण्डित रामजन्म मिश्र, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, संस्करण २००१ ई.

**प्रासादमण्डन** : सूत्रधार मण्डन, कोलकता संस्कृत सीरीज, कोलकता, १९४८ ई. अनुवादक- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली २००५ ई.

**बृहत्संहिता** : वराहमिहिर कृत, अनुवादक- अच्युतानंद झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण १९९७ ई. तथा *वाराहीसंहिता* नाम से पं. सुखानंद मिश्र एवं पं. बलदेव मिश्र कृत अनुवाद, खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई, संस्करण २००० ई.

**बृहत्संहिता** : वराहमिहिरकृत, भटोत्पल विवृत्ति संपादक- सुधाकर द्विवेदी, पुनर्संपादन- कृष्णकुमार द्विवेदी, संपूर्णानंद संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी, द्वितीय संस्करण १९९७ ई.

**बृहद्वास्तुमाला** : पं. रामनिहोर द्विवेदी कृत, संपादक- ब्रह्मानंद त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९९८ ई.

**बृहद्वास्तुमालाप्रयोग** : हरिशङ्कर पाठक संपादित, भारतीय विद्या संस्थान, वाराणसी, १९९२-९३ ई.

**मत्स्यपुराण** : वेद व्यास विरचित, संपादक- मोतीलाल जालान, कल्याण मासिक का विशेषाङ्क, गीताप्रेस गोरखपुर, १९८५ ई.

**मनुष्यालयचन्द्रिका** : नीलकण्ठविरचित, व्याख्याकार- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, दिल्ली, २००४ ई.

**मयमतम्** : मयमुनि विरचित, संपादक- टी. गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम्, १९१९ ई. तथा अंग्रेजी अनुवाद, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९९० ई.

**महाभारत** : कृष्णद्वैपायनव्यास प्रणीत, गीताप्रेस गोरखपुर वि.सं. २०२५ तृतीय

संस्करण एवं पी. सी. राय सम्पादित, कलकत्ता १८८१ ई.

**महाराणा प्रताप का दरबारी पण्डित चक्रपाणि मिश्र और उसका साहित्य:** चक्रपाणि कृत विश्ववल्लभ, मुहूर्तमाला एवं राज्याभिषेकपद्धति का संपादन एवं अनुवाद डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', महाराणा प्रताप स्मारक समिति, उदयपुर, २००२-०३ ई.

**मानसार :** मानमुनिविरचित, मूल, संपादक- प्रसन्नकुमार आचार्य, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, प्रथम संस्करण १९३२ ई. तथा मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली से पुनर्प्रकाशित १९९५ ईस्वी तथा हिंदू आर्किटेकचर इन इंडिया एंड एब्रॉड, मानसार सीरीज, ऑक्सफोर्ड, १९४६ ई.

**मानसोल्लास अपरनाम अभिलषितार्थचिंतामणि ( द्वितीयभाग ) :** भूलोकमल्ल सोमेश्वर विरचित, संपादक- जी. के. श्रीगोण्डेकर, बड़ौदा ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा १९३९ ई.

**मुहूर्तगणपति :** रावलगणेशदैवज्ञकृत, अनुवादक-डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९९६ ई.

**मुहूर्तचिंतामणि :** राम दैवज्ञ कृत तथा प्रमिताक्षरा टीका, संपादक अनूप मिश्र, गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, मुंबई, संस्करण १९२८ ई., रामदैवज्ञ कृत तथा गोविंद दैवज्ञ विरचित पीयूषधारा टीका, संपादक - केदारदत्त जोशी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पुनर्मुद्रित संस्करण १९९५ ई. तथा विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी कृत व्याख्या, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण २००० ई.

**मुहूर्तमार्तण्ड :** दैवज्ञ नारायण विरचित, पण्डित सीताराम झा कृत टीका, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण १९९२ ई.

**राजमार्तण्ड :** धाराधिप भोजराज कृत, द्रोणाग्रस्य अधःपुरे निवसतो चंद्रावतौ तारावल्लभशर्मणा व्यलिलिखिज्जैदेवशर्मा संपादित, खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर छापाखाना, मुम्बई, संवत् १९५३ (१८९६ ई.)

**राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् :** सूत्रधारमण्डन कृत, संपादन व व्याख्या- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली २००४ ई. *वास्तुराजराजवल्लभ* नाम से रामयत्न ओझा द्वारा संपादित, मास्टर खेलाड़ीलाल संकटाप्रसाद, बनारस, २००० ई.

**लीलावती :** भास्कराचार्यकृत, संपा. प्रो. रामचंद्र पाण्डे, कृष्णदास अकादमी,

वाराणसी १९९० ई. तथा पण्डित दामोदर मिश्र कृत वासना भाष्य, संपादक- दयानाथ झा, मिथिला रिसर्च इंस्टीट्यूट, दरभङ्गा १९५९ ई.

**वशिष्ठसंहिता :** वृद्धवशिष्ठ विरचित, संपादन डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', प्रकाशनाधीन

**वत्थुसारपयरणम् :** चन्द्राङ्गज ठक्करफेरूकृत प्राकृतरचना, गुजराती अनुवाद- भगवानदास जैन, राज-राजेंद्र प्रकाशन ट्रस्ट, अहमदाबाद, विक्रम संवत् २०४६ ई.

**वास्तुप्रदीप :** वासुदेवदैवज्ञकृत, कतिपय श्लोक विंध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी कृत *वास्तुरत्नाकर* ग्रंथ में उद्धृत, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, सातवाँ संस्करण १९९७ ई.

**वास्तुरत्नावली :** जीवनाथ झा दैवज्ञ कृत, टीकाकार अच्युतानन्द झा, चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी, तृतीय संस्करण १९८१ ई.

**वास्तुविद्या:** विश्वकर्मा कृत, के. महादेव शास्त्री कृत व्याख्या, अनंतशयन ग्रंथावली, त्रिवेंद्रम द्वितीय संस्करण १९४० ई.

**वास्तुविद्यांयां :** विश्वकर्मा कृत (एक अन्य पाठ) सम्पादक एवं गुजराती टीका- प्रभाशङ्कर ओघड़भाई सोमपुरा, पथिक सोसायटी, अहमदाबाद, १९७७ ई.

**वास्तुसारमण्डनम्:** सूत्रधार मण्डन, संपादक- प्रभाशङ्कर ओघड़भाई सोमपुरा, पथिक सोसायटी, अहमदाबाद, १९७७ ई. समीक्षा एवं अनुवादक- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, न्यू चंद्रावल, दिल्ली, २००४ ई.

**वास्तुसौख्यम् :** टोडरानंद विरचित व पण्डित कमलकांत शुक्ल कृत अनुवाद, संपूर्णानंद संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी, संस्करण १९९५ ई.

**विष्णुधर्मोत्तरमहापुराण :** कृष्णद्वैपायन व्यास प्रणीत, संपादक- मधुसूदन माधवप्रसाद शर्मा, खेमराजकृष्णदास, वैंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई १९११-१२ ई. पुनर्संपादन- नागशरणसिंह, नाग पब्लिकेशन, जवाहर नगर,दिल्ली, १९९८ ई. अंग्रेजी अनुवाद- डॉ. प्रियबाला शाह, परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, २००३ ई.

**विश्वमकर्माप्रकाश :** विश्वकर्माभाषित, भाषा- मिहिरचंद्र, खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई संस्करण १९९८ ई.

**विश्वकर्मवास्तुशास्त्रम् :** विश्वकर्माभाषित, संपादक- के. वासुदेव शास्त्री, सरस्वती महल पुस्तकालय, तन्जौर, संस्करण १९९९ ई.

**व्यवहाररत्नम्** : दैवज्ञश्रीभानुनाथकृत, व्याख्याकार- डॉ. ब्रह्मानंद त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९८८ ई.

**वृक्षायुर्वेद** : सुरपाल प्रणीत, संपादक- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, २००४ ई.

**शिल्पदीपक** : गङ्गाधर प्रणीत, पं. गोवर्द्धन कृत गुजराती टीका सहित, महादेव रामचंद्र जागुष्टे, त्रण दरवाजा, अहमदाबाद, द्वितीय संस्करण १९०८ ई.

**शिल्परत्नम्**- श्रीकुमारविरचितम् द्वितीय भाग- संपादक टी. गणपति शास्त्री, अनंतशयन संस्कृत ग्रंथमाला, क्रमांक-५६, राजकीय मुद्रणालय, त्रिवेंद्रम्, १९१७ ई.

**शिल्परत्नाकर** : नर्मदाशङ्कर सोमपुरा कृत, दिनकर राय नर्मदाशङ्कर सोमपुरा, हलवद दरवाजा के पास, ध्राङ्गध्रा-गुजरात, द्वितीय संस्करण १९९० ई.

**समराङ्गणसूत्रधार**- धाराधिपभोजदेवविरचितम् - संपादक टी. गणपति शास्त्री, गायकवाड संस्कृत ग्रंथमाला, क्रमांक-२५, केंद्रीय पुस्तकालय, वडोदरा, १९२९, पुनर्संपादन- प्रो. पुष्पेंद्रकुमार संपादित, न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, दिल्ली, २००० ई.

Scanned with CamScanner

## श्रीकृष्ण 'जुगनू'

राजस्थान के चित्तौड़गढ़ जिले के आकोला ग्राम में २ अक्टूबर, १९६४ को जन्म।

स्वशिक्षित- अधिस्नातक (प्राचीन भारतीय इतिहास, हिंदी एवं अंग्रेजी)

पी-एच.डी.- मेवाड़ प्रदेश का हीड़ साहित्य (राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर)

अन्य- पत्रकारिता में पीजी डिप्लोमा, शिक्षास्नातक (सुखाड़िया विवि, उदयपुर)

इतिहास-पुरातत्त्व, शिल्प, कला, स्थापत्य, शिक्षा, धर्म व संस्कृति जैसे विषयों के अध्ययन-अध्यापन, अनुसंधान और लेखन में गहरी रुचि तथा एतद् विषयक स्थलों का यथा संभव टोही भ्रमण। इन्हीं विषयों पर वर्ष १९७८ से अद्यावधि पांच हजार से अधिक आलेखों का देश के प्रतिष्ठित पत्रों-पत्रिकाओं में सचित्र प्रकाशन। दर्जनों शिलालेखों, सुरह लेखों, ताम्रपत्रों, पट्टों, पाण्डुलिपियों, लिपियों का अध्ययन और मूलपाठ का अक्षरान्तर, प्रकाशन और अनुवाद। भारतीय कलाओं के इतिहास पर **'कला की कालकथा'** स्तम्भ का लेखन।

राकेट (बाल मासिक) रङ्गायन (लोक संस्कृति विषयक त्रैमासिक) सहित एक दर्जन स्मारिकाओं का संपादन। राजस्थान का लोक पहनावा (मानव संसाधन विकास मंत्रालय के लिए शोध सर्वेक्षण), भलाभाई-बुराभाई (राजस्थानी लोककथाएं), मेवाड़ के लोक नृत्य, विवाह की बंदनवाल (मेवाड़ के विवाह गीत), चितचोर चित्तौड़; दर्शनीय उदयपुर व मेवाड़ के मन्दिर, मंदिर श्रीअंबामाताजी उदयपुर तथा लोकशक्तिपीठ आसावरा माता, **महाराणा प्रताप का दरबारी पण्डित चक्रपाणि मिश्र और उसका साहित्य** में राज्याभिषेक पद्धति, मुहूर्तमाला व विश्ववल्लभ का संपादन, अनुवाद व विस्तृत भूमिका। पारंपरिक अनुरंजनकारी माध्यमों पर **भारतीय लोकमाध्यम** का प्रकाशन।

वास्तु एवं शिल्प विषयक ग्रंथों में सूत्रधार मण्डन विरचित **राजवल्लभवास्तुशास्त्रम्, देवतामूर्तिप्रकरणम्, प्रासादमण्डनम्, वास्तुमण्डनम्, वास्तुसारमण्डनम्** एवं **आयतत्त्वम्** ग्रंथों का आलोचना पाठ सहित संपादन, अनुवाद और शोधपूर्ण विस्तृत भूमिका लेखन। सूत्रधार नाथा कृत **वास्तुमञ्जरी** के तीनों स्तबकों- वास्तुस्तबक, प्रासादाधिकार व रूपाधिकार का संपादन एवं अनुवाद। ठक्कर फेरूकृत प्राकृतग्रंथ **वत्थुसारपयरणम्** के प्रामाणिक पाठ का संपादन, अनुवाद व विस्तृत भूमिका। सूत्रधार गोविंद कृत **कलानिधि-शिखराधिकार** का संपादन व विस्तृत भूमिका। विश्वकर्मीय **ज्ञानप्रकाशदीपार्णव** का आलोचना पाठ सहित संपादन व अनुवाद। अन्य ग्रंथों में द्राविड़ ग्रंथ **मनुष्यालयचन्द्रिका, वास्तु एवं शिलाचयन** का प्रकाशन। सुरपाल विचित वृक्षायुर्वेद का संपादन व अनुवाद सहित प्रकाशन श्रीपतिभट विरचित **ज्योतिषरत्नमाला** का प्रथम संपादन व अनुवाद। प्रस्तुत वास्तुविषयक ग्रंथ **शिल्पदीपक** में जन वास्तु विषयक प्राचीन मतों पर सविशेषोदाहरण विमर्श विवेचन।

Scanned with CamScanner

# Our Important Books

| | | |
|---|---|---|
| **Inscriptions of Ashoka** by Naresh Prasad Rastogi. Foreword by Krishna Deva, with Plates | (C. S. St. 103) | 800-00 |
| **Origin of Brahmi Script The Beginning of Alphabet in India** by Dr. Naresh Prasad Rastogi | (K. S. St. 11) | 125-00 |
| **Fine Arts and Technical Science in Ancient India with Special reference to Somesvara's Manasollasa.** By Dr. Shiva Shekhar Misra | (K. S. St. 3) | 100-00 |
| **Mints & Minting in India** : By Dr. Upendra Thakur | (C. S. St. 88) | 75-00 |
| **Vishnudhvaja or Qutbminar** : By Dr. D. S. Triveda | (C. S. St. 24) | 40-00 |
| **The Study of Indian Art** : By K. De B. Codrington. With IIlustrations | (C. S. St. 101) | 150-00 |
| **A Study of Hindu Art & Architecture** : With Special Reference of Terminology. By Dr. Lalit Kumar Sukla. With Several illustrations | (C. S. St. 82) | 350-00 |

## लेखक की अन्य कृतियाँ

**वास्तुमञ्जरी** (An Indian Treatise on the Construction of House, Temple Buildings Iconography) सूत्रधारनाथसेनविरचितम्। संपा. एवं व्याख्याकार—डॉ. श्री कृष्ण 'जुगनू' — शीघ्र

**चित्रलक्षणम्** (अपरनाम ब्राहीय चित्र लक्षणम्) An Ancient Treatise on Indian Painting) हिन्दी व्याख्या एवं टिप्पणी सहित। संपा एवं व्याख्याकार—डॉ. श्री कृष्ण 'जुगनू' — शीघ्र

designed by Shreyashi GRAPHICS, mo. 9839814784

*Also can be had from*
**Chowkhamba Krishnadas Academy**
Post Box 1118
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Near Golghar (Maidagin), Varanasi-221001 (India)
Phone : (0542) 2335020

ISBN : 81-7080-160-5

Price [redacted]